ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म सृष्टि सम्वत् 1960853043 माह अश्विन, कृष्णपक्ष तृतीया, विक्रम सम्वत् 1999, ईसवी सम्वत् 27 सितम्बर 1942 में हुआ। पूज्यपाद गुरुदेव का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीर धारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। पूज्यपाद गुरुदेव का निर्वाण सृष्टि सम्वत् 1960853093 माह कार्तिक, कृष्णपक्ष चतुर्थी, विक्रम सम्वत् 2049, ईस्वी सम्वत् 15 अक्तूबर 1992 को हुआ। **शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान।**

भगवान कृष्ण 3 से 91

1. राजा कंस को कर देने का विरोध 04 09 1969 ---------- 5
2. देवर्षि नारद के द्वारा आकाशवाणी 04 09 1969 ---------- 5
3. माता देवकी का कारागार में गायत्री अनुष्ठान के द्वारा अन्न का शोधन करके पान करना 21 04 1969 ---------- 6
4. तपस्वी माता 03 09 1988 ---------- 6
5. माता देवकी को महान आत्मा का पूर्व आभास 19 02 1980 ---------- 6
6. युद्ध से पूर्व निरीक्षण 16 05 1975 ---------- 7
7. जयद्रथ वध ---------- 10
8. कारागार में देवकी का जीवन ---------- 13
9. वस्त्र ---------- 13
10. वनवास में ---------- 13
11. भगवान कृष्ण की विज्ञानशाला में अन्धकार यन्त्र ---------- 13
12. कृष्ण और अर्जुन की वैज्ञानिक चर्चाएं ---------- 15
13. वेद मन्त्र का मन्थन ---------- 16
14. संकल्प शक्ति ---------- 17
15. षोडश कलाओं के जानने वाले भगवान कृष्ण थे। ---------- 19
16. भगवान कृष्ण व माता रूक्मिणी चर्चा ---------- 19
17. भगवान कृष्ण का आश्रम वैज्ञानिक भगवान कृष्ण ---------- 19
18. द्वारिका में कृष्ण ---------- 19
19. वेद मन्त्र के आशय पर चिन्तन ---------- 20
20. भगवान कृष्ण का जन्म ---------- 21
21. नाग जाति को शरण ---------- 22
22. राजा ---------- 24
23. जीवन चर्या ---------- 24
24. यन्त्र निर्माण ---------- 24
25. राष्ट्र निर्वाचन ---------- 26
26. भगवान कृष्ण का जीवन ---------- 26
27. सोमतिती रेखा ---------- 27
28. रात्रि यन्त्र ---------- 27
29. आहार से मन की पवित्रता ---------- 28
30. गीता का उपदेश ग्रहण करना ---------- 29
31. पति-पत्नी का यज्ञ ---------- 29
32. अर्जुन कृष्ण चर्चा ---------- 32
33. जयद्रथ ---------- 35
34. ज्योति लिंग ---------- 36
35. गौ का महत्व ---------- 38
36. गीता का उपदेश ---------- 38
37. वास्तविक स्वरूप का विराट स्वरूप ---------- 40
38. सुदर्शन ---------- 41

भगवान कृष्ण 4 से 91

39. आहार चर्चा राधा संकीर्तन---41
40. विद्युत---41
41. भगवान कृष्ण का पूर्व जन्म ---42
42. गोपिकाएं ---43
43. भगवान कृष्ण से एक समय महारानी रूक्मिणी ने कहा कि प्रभु! गौ हम किसको कहते हैं?---43
44. गौ सेवा---45
45. युद्ध शान्ति का आग्रह---47
46. वायुमडण्ल ---48
47. भगवान कृष्ण द्वारा बब्रीक परीक्षा---49
48. कृष्ण द्रौपदी संवाद---50
49. सम्वतसर---51
50. भगवान कृष्ण का गुरु संदीपन महाराज से मुद्रिका पर संवाद---52
51. भगवान कृष्ण का ऋषि संदीपन के आश्रम में अध्ययन करते हुए ब्रह्मवर्चोसि बनना ---57
52. त्रि-विद्या का योग द्वारा साक्षात ---62
53. यह अनुपम जगत् एक माला के सदृश है महाराजा कृष्ण महान् वैज्ञानिक थे ---67
54. भगवान कृष्ण का गुरु संदीपन से योग-विद्या-ज्ञान प्राप्त करना---75
55. पुरातन काल की गुरु-शिष्य परम्परा व आधुनिक काल ---76
56. स्वायम्भु मनु ---85

1. राजा कंस को कर देने का विरोध 04 09 1969

भगवान श्रीकृष्ण ने अनेक सेवकों को नष्ट किया परन्तु वह स्वयं ज्यों के त्यों रहे। गृहों में जितना भी दही और धृत था वह महाराजा कंस के यहाँ जाता था। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि धृत ग्रहों में रहना चाहिए या इसे मुझे पान कराओ। मेरे पान करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक गृह में इसका प्रविष्ट होना चाहिए। यह राजा के यहाँ इस प्रकार कर नहीं जाना चाहिए। देखो बाल्यकाल में उसकी इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह अपनी तीव्रता से कार्य करते थे। जहाँ उनका जीवन इतना बलिष्ठ और इतना चातुर्यता में था उतना ही उनका यौगिकता में पारंगत था।

2. देवर्षि नारद के द्वारा आकाशवाणी 04 09 1969

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! अब जितने सेवक थे सब विश्राम करने लगे और सब गाढ़ निद्रा में परिणत हो गये। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके उन्हें जमुना को पार करना था। जमुना को पार करते हुए यशोदा द्वारा उस पुत्र को त्याग दिया। उसी रात यशोदा के कन्या को जन्म हुआ। यशोदा ने उसे अपने पति को अर्पित कर दिया। देवकी ने उसे स्वीकार कर लिया। दिवस होते ही कंस ने कहा कि क्या पुत्र है या पुत्री है। उन्होंने कहा महाराज पुत्री है। महाराजा कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस हुए कि नारद पुनः आ गये। देव ऋषि नारद ने कहा कहिये भगवन! कंस ने कहा कि महाराज मैंने तो सर्व शिशु को नष्ट कर दिया है तो उन्होंने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का जो कारण बन गया है। वह तो माता यशोदा के यहाँ पुत्र चला गया वह नष्ट नहीं हो सकेगा, यह वाक्य कंस ने श्रवण किया परन्तु उन्होंने अपने नाना योधा क्षत्रियों को एकत्रित किया और उनसे कहा कि उसे नष्ट करो। परन्तु वह कैसे नष्ट हो सकता था। महापुरूषों की महिमा अलौकिक होती है उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनके नेत्रों की और सब इन्द्रियों की प्रतिमा एक अलौकिक होती है। उनकी अलौकिकता को

कोई नष्ट नहीं कर सकता।

3. माता देवकी का कारागार में गायत्री अनुष्ठान के द्वारा अन्न का शोधन करके पान करना 21 04 1969

जैसे राजा कंस के कारागार में वहाँ वसुदेव और देवकी रहते थे। देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती थी। संकल्पवादिनी बनी रहती थी। भगवान कृष्ण जैसो को जन्म देने वाली हुई। वे माताएँ महान् कैसी होती है। जिसका मन पवित्र होता है। मानो देखो, एक सौ एक गायत्री पठन-पाठन करके जो कंस अन्न देता था उसको गायत्री माँ से शोधन करके, शुभ संकल्प करके उसको पान करती थी। मेरे पुत्रो! इन क्षेत्रों में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा।

4. तपस्वी माता 03 09 1988

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में बेटा! देखो, महाराजा कंस के कारागार में माता अपने में तपस्विनी बनी हुई है। गायत्री छन्दों का पठन-पाठन कर रही है और मानो देखो, देवकी के गर्भ से ही भगवान कृष्ण का जन्म होता है। जब वह जन्म हुआ तो मेरे पुत्रो! देखो, संसार अपने में वृत्तियों में रत्त हो गया। मेरे पुत्रो! देखो, उनके जीवन में एक महानता की प्रतिभा रही है। मुनिवरो! देखो, जब वह जन्म लेता है तब ही उसकी महानता का जन्म होता है। उसके साथ-साथ जब महानता का जन्म होता है तो मुनिवरो! देखो, राजा कंस के, जो उस कारागार में प्रहरी थे, वे भी निंद्रा को प्राप्त हो गये। मेरे पुत्रो! देखो, वह द्वितीय द्वारं ब्रह्मे द्वार को त्याग करके पिता ने द्वितीय स्थान पर उसे प्रवृत्त कराया।

5. माता देवकी को महान आत्मा का पूर्व आभास 19 02 1980

देवकी और वासुदेव दोनों महाराज कंस के कारागार में रहते थे। जब उनके सातवें गर्भाशय की स्थापना हुई और द्वितीय माह हुआ, तो माता की "अस्ताम् ब्रह्मणाः" सीधे नेत्र के ऊर्ध्व

भाग में एक लालिमा-धारी उत्पन्न हो गई। तो विचार करने लगी, अपने देव से बोली, ‘‘हे प्रभु! ये लालिमा की धारी केसे निर्मित हुई है? इसको मैं जान नहीं पाई ूं।’’ द्वितीय में हरितिमा हो गई। हरितिमा हो करके इसके ऊपर चिन्तन होने लगा। तो वासुदेव वैज्ञानिक भी थे, और वह गायत्री का चिन्तन करते थे, मनन करते थे। क्योंकि वहाँ कार्य क्या था दोनों मनन करते रहते थे। तो मुनिवरो! उन्हांने कहा, ‘‘हे देवी! ‘‘सम्भवतिः नित्याम् देवाः अब्रतम् ब्रह्मवरणीः कृतोः अस्तोः’’ उन्होंने कहा, देवी! कुछ ऐसा मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारे गर्भ-स्थल से ऐसे सन्तान का जन्म होने वाला है जिससे इस कारागार के बन्ध से हम मुक्त हो जायें। उन्होंने यह निश्चित कर लिया कि यही वाक्य है।

मेरे प्यारे! यह विज्ञान है जो लालिमा माता के रहन-सहन की प्रतिक्रिया का परिवर्तन हो जाता है। यह विद्या कहाँ है? मुनिवरो यह दर्शनों में तुम्हें प्राप्त होगी। जब मानव अपने दर्शन करने लगता है तो द्वितीयों का (दूसरों का) वर्णन नहीं क्योंकि अपना ही दर्शन करना है।

6. युद्ध से पूर्व निरीक्षण 16 05 1975

जब मै महाभारत के काल में जाता हूँ तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है कि भगवान कृष्णा और अर्जुन दोनों एकान्त में विराजमान होकर आत्मा का और शारीरिक भोजन दोनों का प्रयास करते थे, दोनों का चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है। मुझे वह काल स्मरण है, आत्मा का जो भोजन है इसे यह बाह्य जगत में अज्ञान, ममता छा जाने से मानव उपरामता को प्राप्त हो जाता है।

द्वापर के काल में महाभारत का संग्राम हो रहा है। दोनों पक्ष की सेना विराजमान है। भगवान कृष्णा और अर्जुन दोनों पक्ष की सेना मे विराजमान हैं। अर्जुन ने भगवान कृष्णा से कहा कि प्रभु! मैं दोनों पक्षों की सेनाओं को दृष्टिपात करना चाहता हूँ कैसी विशाल सेनायें हैं। जो ये हमारे कुल का कल्याण चाहने वाली सेना हैं और हमारे कल्याण के लिये नाना राजा महाराजा एकत्रित हो रहे हैं। मै उन दोनो पक्षो को दृष्टिपात करना चाहता हूँ भगवान कृष्णा और अर्जुर्न दोनों, सेनाओं के मध्य विराजमान हो गये और जब दोनों

को सेनाओं मे मध्य मे विराजमान हो गये तो दोनो पक्षां की दृष्टिपात करने लगे उनमें अपना ही वंशलज विराजमान है, अपने ही सम्बन्धी विराजमान हैं। उनके बाबा भीष्म जो राष्ट्रपिता कहलाते हैं आदित्य ब्रह्मचारी हैं अपने-अपने आसन पर विराजमान हैं और एक-दूसरे के प्राणों को हनन करने के लिए तत्पर हैं। अब उस काल में अर्जुन का हृदय विदीर्ण हो गया, कम्पायमान हो गया अर्जुन कहता है हे महाराज! हे जनार्धन! मैं यह क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ? मैं अपने कुटुम्ब को दृष्टिपात कर रहा हूँ? अपने कुटुम्ब के सम्बन्धी ही दृष्टिपात कर रहा हूँ। यह सब हमारे कल्याण के लिये विराजमान हैं अथवा अकल्याण के लिये। जब यह वाक महाराजा भगवान कृष्ण ने श्रवण किया तो वह अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! त्ुम यह क्या वाक् उच्चारण कर रहे हो। यह वाक् तुम्हारे मुखारबिन्दु से शोभा नहीं देते क्योंकि यह अज्ञान है, यह अज्ञानमयी जीवन है। अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा कि मैं संग्राम नहीं चाहता। क्योंकि मैं लोक के लिये अपने कुटुम्ब को समाप्त नहीं करना चाहता हूँ। भगवान कृष्ण ने यह विचारा कि क्या करना चाहिये इसको तो अज्ञान छा गया। ममतामयी आ गयी है यह ममतामयी मानव का हृस कर देती है। मानव के जीवन का विनाश कर देती है, कर्तव्य की अवहेलना करा देती है। यहाँ कर्तव्य आना बहुत अनिवार्य है। उन्होने कहा हे अर्जुर्न! यह तो तुम्हारा कर्तव्य है।, इन मानव शरीरों में जो आत्मा प्रवेश कर रही है, आत्मा जो गति कर रही है उस आत्मा का विनाश नहीं होता। यह आत्मा सदैव एक रस रहने वाली चेतना है। आज तुम आत्मा के लिये मोह करते हो या शरीर के लिये मोह करते हो, यह शरीर भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! दर्शनकार कह रहा है कि क्या जिस वस्तु का निर्माण होता है जो वस्तु परमाणुओं से निर्माणित होती है उस वस्तु का विनाश अनिवार्य है। जब विनाश अनिवार्य है तो उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है। परन्तु जिस वस्तु का विनाश नहीं होता, जो वस्तु सदैव रहने वाली है उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है।

जब उन्होंने ऐसे शब्दों का उच्चारण किया तो अर्जुन ने कहा प्रभु! जब यह स्वाभाविक होने वाला है, तो मुझे अकीर्ति वाले कर्म में क्यों परिणत कर रहे हैं? उन्होंने कहा हे अर्जुन! यह अज्ञान, यह तुम्हारा अज्ञान है। उन्होने कहा अपनी अन्तरात्मा में ध्यानावस्थित हो

जाओ। जब अर्जुन अन्तरात्मा मे ध्यानावस्थित हो गये अपने बाह्य जगत को आन्तरिक जगत मे दृष्टिपात करने लगे तो उन्हें आत्मिक शान्ति उत्पन्न हुई। उनकी ममता में सान्त्वना की स्थापना होने लगी। उन्होंने कर्तव्य के लिए कहा कि अर्जुन! तेरा यह कर्तव्य है और कर्तव्य की अवहेलना करने वाला प्राणी, अपकीर्ति को प्राप्त होता है। इसीलिए , प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को इस संसार में अपने-अपने कर्तव्यवादी मार्ग को ग्रहण कर लेना चाहिये। जो भी संसार में कर्तव्य करने वाला है, वह महान कहलाया गया है। हे अर्जुन! प्रातः काल में सूर्य उदय होता है, और सूर्य अपना प्रकाश लेकर आता है, संसार को तपाता रहता है, प्रकाशमान करता रहता है। वह प्रातःकाल से सायंकाल तक तपता रहता है। जब वह तपायमान रहता है, तपता रहता है तो सायंकाल को अस्त हो जाता है, अन्धकार छा जाता है, शुक्ल पक्ष छा जाता है। एक माह में दो प्रकार के पक्ष होते हैं कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष। इसलिये हे अर्जुन! जब शुक्ल पक्ष आ जाये तो मानव को अभिमान में परिणत नहीं होना चाहिये और जब अन्धकार, कृष्ण पक्ष आ आये तो मानव को अपनी मानवीयता में, ह्रसता को प्राप्त नहीं होना चाहिये। इसलिये हे अर्जुन! आज तुम अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मानवीयता में रमण करते चले जाओ।

इतना उपदेश देने के पश्चात भगवान कृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! तुम मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाओ। जब उन्होंने उनकी अन्तरात्मा में प्रवेश किया तो उन्हें विराट रूप का दिग्दर्शन कराया, अग्नि प्रदीप्त हो रही है, समुद्र अपनी आभा में स्थिर हो रहा है, वायु गति कर रहा है, जल प्रभाव से गति कर रहा है, पृथ्वी का चक्र चल रहा है। जब यह प्रकृति यह चक्र पंच महा भौतिक पिण्डों में गति कर रहा है। तो यह संसार सर्वत्रता में विनाश को प्राप्त होता हुआ दृष्टिपात हो रहा है। उन्होंने इस प्रकार लगभग एक घड़ी तक इस विराट रूप का दिग्दर्शन कराया। तो दिग्दर्शन कराते ही उनका अन्तरातमा विशाल बन गया। अर्जुन ने कहा-प्रभु! मेरा अज्ञान समाप्त हो गया है। अब मैं कर्तव्य का पालन करूँगा, आप जो मुझे दृष्टिपात करा रहे हैं, मेरी आत्मा में प्रकाश दे रहे हैं। मेरी आत्मा मे जो प्रीति दे रहे है आज में उस आत्मा में, भयभीत होना नहीं चाहता हूँ, मैं उस पामरता को प्राप्त करना नहीं चाहता हूँ। उसे योगाभ्यास दृष्टिपात कराया जा रहा है। योग में वह गति

कर रहा है क्योंकि एक-दूसरी वस्तु के मिलान का नाम याग कहा जाता है योग का अभिप्रायः क्या है? योग कहते है जब यह पंच-महाभौतिकों से पिंड का निर्माण होता है। तो यह योग कहलाया गया है इसी योग के आधार पर योगी प्राणायाम करते हैं और प्राणायाम करते हुए प्राण की गति को रेचक और कुम्भक में परिणत कर देते हैं। यह दस प्राण हैं, इन दस प्राणों की आभा को मन रूपी सूत्र में पिरो देते हैं। मन रूपी सूत्र जब परमात्मा अथवा ज्ञान में पिरोया जाता है तो उस समय एक माला बन करके अन्तरात्मा प्रसन्न होता रहता है।

7. जयद्रथ वध

भगवान कृष्णा अपने सखा के अज्ञानता को नष्ट करने के लिए, प्रकाश में लाने के लिए अपने सखा को प्रकाश में लाये। उस समय वह अज्ञान समाप्त हो गया। वह विराट स्वरूप क्या है? एक-दूसरी आत्मा का दिग्दर्शन कराने का नाम विराट स्वरूप माना गया है। आत्मा एक चेतना है। वह चेतना में पंचमहाभूतों के आधार पर स्थिर रहने वाला है। यह जो पंच-महाभूत हैं जब आत्मा अपने स्वरूप में रमण करता है तो यह पंच-महाभूत पृथक दृष्टिपात आते हैं और अपनी आत्मा-चेतना उसे पृथक दृष्टिपात आने लगती है। मन और प्राण का यह जो जगत है यह दृष्टिपात होता है मन और प्राण ही इस प्रकृतिवाद में प्रकृति के चक्र को चला रहा है। प्राण से संसार का विभाजन होता है। मन से क्रिया का होता है, ज्ञान की प्रतिभा उत्पन्न होती है। मन विभाजन करता है। मन एक वस्तु को विभाग में लाता है। एक विभक्त करने वाला और एक विभाजन होने वाली दो शक्तियाँ संसार में अपना कार्य कर रही हैं। भगवान कृष्णा ने ढाई घड़ी के उपदेश में यही दिग्दर्शन कराया। एक घड़ी तक आत्मा को ब्रह्म का उपदेश दिया आत्मा को भोजन का चिन्तन करने का आश्वासन दिया और यह कहा, हे अर्जुन! तुम आत्मा को जानो, आत्मा को भोजन देने का प्रयास करो। आत्मा को भोजन देने वाला प्राणी, संसार सागर से पार हो जाता है। संसार की आभाओं में वह आभायित होता रहता है। भगवान कृष्णा कह रहे हैं हे सखा! यदि उससे भी अज्ञान समाप्त नहीं होता तो तुम मेरे में अपनी आत्मा को प्रवेश करो। वे आत्मा

में ध्यानावस्थित हो गए और उस प्रभु का चिन्तन करने लगे। जब प्रभु के आँगन में पंचमहा भौतिक पिंड की गतियों में गति करना प्रारम्भ हुई तो यह चक्र चलता हुआ दृष्टिपात हुआ। यह संसार, यह प्रकृति का चक्र चल रहा है जिसमें कोई मृत्यु को प्राप्त हो रहा है, कोई जीवन को प्राप्त हो रहा है। मृत्यु है, जीवन है। मरण है और जीवन है यह प्रकृति के चक्र में दृष्टिपात हो रहा है। परन्तु ये जो दोनों सेनाएं उन्हें दृष्टिपात आ रही थी, ये भी मृत्यु के, काल के आँगन में विराजमान थी। काल इनको निगलता चला जा रहा था। भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! बिना समय के मानव की मृत्यु नहीं होती। वास्तव में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, मृत्यु केवल अज्ञानता में दृष्टिपात आती है। आज तुम अपने जीवन को धारण करो, और प्रकाश मे ले आओ। जब आत्मा का आत्मा से मिलान हुआ, आत्मा से आत्मा की जागरूकता आई। वह भी पुरुष था, जिसको ममता नहीं थी और वह भी पुरुष था जिसे ममता आ गई।

भगवान कृष्ण बोले हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रतीत है कि हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रतीत है क्या मैं भी तुम्हारे विराजमान हूँ और तुम भी मेरे सखा हो। मेरे समीप तुम्हारा जीवन प्रतिभा में परिणात रहा है, तुम्हें ज्ञान है, तुम्हें उस आभा में जाना है जिस आभा में योगी जाता है, जिसे मृत्यु से भी भय नहीं होता। यह संसार जो आज तुम्हारे कल्याण के लिए, तुम जिसे कल्याण के लिए कहते हो इनका समय निकट आ रहा है, यह मृत्यु के मुखारबिन्दु में विराजमान हैं, तुम इन्हें नष्ट न करोगे, उस कर्तव्य का तुम पालन न करोगे तो उसके पश्चात भी इन्हें शरीर को त्यागना है और करोगे तो उसके पश्चात भी इन्हें शरीरों को त्यागना है। जब यह उपदेश दिया और कहा, हे अर्जुन! मुझे ममता नहीं आती संसार की। कारण क्या है क्योकि दर्शनो का जो आनन्द है,और वह जो आत्मा का भोजन है, इस आत्मा के भोजन, को जो मानव पान कर लेता है आत्मा का भोजन जिस मानव को प्राप्त हो जाता है वह इस संसार से उपरामता को प्राप्त हो जाता है। आत्मा का भोजन क्या है? आत्मा का भोजन रूप, रस, गंध कहलाया गया है, इस रूप, रस, गंध को एक स्वरूप में ला करके, एक, प्रतिभा बना करके इसको जो पान कर लेता है इसके वास्तविक स्वरूप को जो अपनी अन्तरात्मा में धारण कर लेता है तो हे अर्जुन! वह इस संसार से उपरामता

को प्राप्त हो करके कर्तव्य की अवहेलना नहीं करता, वह कर्तव्य से दूर नहीं होता, वह सदैव कर्तव्यवादी बन करके वह अपनी आभा में रमण करता रहता है, प्रकृति का चक्र चल रहा है और यह संसार जीवन में, मरण मे प्राप्त हो रहा है।

भगवान कृष्णा ने कहा, हे अर्जुन! वे भी तो महापुरुष हैं जो अपनी ममता को त्याग करके ज्ञान सागर में चले जाते हैं, वे परमात्मा के क्षेत्र में चले जाते हैं, परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह भी मानव हैं जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को जानते हुए परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह त्याग और तपस्या को त्यागते चले जाते हैं, स्थूल शरीर को त्यागते हैं। परन्तु ऐसे भी महापुरुष संसार मे होते हैं इस शरीर को जो बिना माता-पिता के भी आत्मा ग्रहण करता रहता हे, जब यह आत्मा सूक्ष्म शरीर में चला जाता है, परन्तु आत्मा में। प्राण और मन के द्वारा इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है, मन और प्राण कारण और कार्य दोनों को अपने वशीभूत करता हुआ अपनी संकल्प-शक्ति से यह वायुमण्डल में जो पंच-महाभौतिक तरंगें रमण कर रही हैं उन पंच-महाभौतिक तरंगों को वह अपने में धारण करके वह आत्मा स्थूल, सूक्ष्म से ही दोनों शरीरों को अपनी संकल्प-शक्ति से धारण कर लेता है। उसके पश्चात वह लिंगमय ज्योति में चला जाता है। और लिंगमय शरीर में जाने से यह उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है जो संसार का नियन्ता है, जो संसार को धारण करने वाला है, इस संसार में आभा से युक्त होने वाला है, उसको प्राप्त होता रहता है। जब अर्जुन ने इन वाक्यों को श्रवण किया तो उनका अज्ञान, ममतामयी नष्ट हो गया।

उन्हें ब्रह्म का उपदेश दिया। आत्मा-परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कराया। और उसके पश्चात उन्होंने क्रियात्मक जो अपने जीवन में जाना, उस स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए उनका अज्ञान समाप्त हो गया। अज्ञान को समाप्त करने वाले, महापुरूष होते है जो इस अज्ञान को नष्ट कर देते है। महापुरुषों की गोद में जाना, इसीलिए मानव को अनिवार्य है और महापुरुष यह जानता है कि यह अधिकारी है अथवा अनधिकारी है। अधिकारी-अनधिकारी का जानने वाला ब्रह्मवेत्ता, मन्थन करने वाला कहलाता है।

भगवान कृष्णा भी गान गाते थे। गान गाने से ही मेघों के मेघ उत्पन्न हो करके वृष्टि हो

जाया करती थी। भगवान कृष्णा जी के द्वारा एक-एक यन्त्र इस प्रकार का था, कि दिवस की रात्रि बन जाती थी और रात्रि का दिवस बन जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र, जिसके समीप ऐसे संकल्प के यन्त्र जो थे। यन्त्र को वायु में त्याग दिया और जिस प्राणी के लिए यन्त्र त्यागा है, उसी प्राणी को नष्ट करके, यन्त्र उनके द्वार आ जाता था।

8. कारागार में देवकी का जीवन

राजा कंस के कारागार में जहाँ वसुदेव और देवकी रहते थे। देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती थी। संकल्पवादिनी बनी रहती थी। भगवान कृष्णा जैसो को जन्म देने वाली हुई। वे माताएँ महान् होती है। जिसका मन पवित्र होता है। एक सौ एक गायत्री पठन-पाठन करके जो कंस अन्न देता था उसको गायत्री माँ से शोधन करके, शुभ संकल्प करके उसको पान करती थी।

9. वस्त्र

भगवान कृष्णा ने कौरव सभा में द्रौपदी के वस्त्रों को वृद्धि किया। ये आशीर्वाद तो होते है।

10. वनवास में

भगवान कृष्णा के जीवन में सदैव प्रकाश रहता था। वे रक्षक थे, वे सदैव रक्षा करते थे। अपने जीवन की प्रथम और द्वितीय किसी कोई भी प्राणी आ जाये उसकी रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। वे जब वेद की रक्षा करने में लग जाते तो वेद की रक्षा करते रहते, उन्हें क्षुधा भी नहीं लगती थी। जिस समय महारानी द्रौपदी ने अपने पाँचो कुटुम्बियों को और अपने पति को ले करके राष्ट्र-स्थली को त्याग दिया, अस्त्रां-शस्त्रों के भण्डार को भी अग्नि में अर्पित कर दिया। भयंकर वनों में जा पंहुचे। उस भयंकर वन में पंहुचे, जहाँ कोई भी प्राणी उनकी रक्षा में लग गये।

11. भगवान कृष्णा की विज्ञानशाला में अन्धकार यन्त्र

भगवान कृष्णा उनसे थोड़ी दूर स्थली पर एक वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे थे। वे विज्ञान का अनुसन्धान करते थे और उनके आश्रम में जहाँ अनुसन्धान करते थे और भी शिक्षार्थी

विद्यमान होते थे और महारानी रूक्मिणी भी रहा करती थीं। महारानी रूक्मिणी भी, उनके द्वारा, अनुसन्धान करती रहती थीं। एक समय वे एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे और वह यन्त्र ऐसा था जो मैं दिवस की रात्रि कैसे बना सकूं? क्योंकि यह सूर्य अस्त हो जाता है, अन्धकार आ जाता है, रात्रि आ जाती है। नेत्र अन्धकार में अपने को दृष्टिपात करने लगते हैं। यह कैसे अन्धकार आता है? और कहाँ से आता है? तो उन्होंने एक त्रुकेतुक विशारद कृत नाम के यन्त्र का निर्माण किया था और उस यन्त्र में उन्होंने पार्थिव तत्त्वों को जानने की, पार्थिव परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास किया।

उन तत्त्वों को एकत्रित करने के पश्चात उन परमाणुवाद को यन्त्रों में स्थित कर लिया, जिन परमाणुओं से सूर्य की, आदित्य की, किरणों को निगल जाए और रात्रि छा जाए और किरणों वहीं शान्त हो जाए। वह यन्त्र उन्होंने निर्मित किया। जब निर्माण कर लिया तो उसका परीक्षण भी किया गया। जब परीक्षण हुआ तो दिवस की रात्रि छा गई। रात्रि के छाने के पश्चात जब अन्धकार हो गया तो महारानी रूक्मिणी सहायक थीं उन्होंने द्वितीय यन्त्र का निर्माण किया था प्रकाशाम् नाम का यन्त्र था। उसमें यह था कि यदि उस यन्त्र को त्याग दिया जाए, उसका प्रहार कर दिया जाए तो अन्धकार के परमाणुओं को निगल लेता। सूर्य की किरण ज्यों की त्यों उसके प्रकाश में आ जाए। उन्होंने इन दो यन्त्रों का निर्माण एकांत स्थली पर, भयंकर वनों में किया था। इस यन्त्र की विशेषता भीम के पुत्र घटोत्कच भी जानते थे। इस प्रतिक्रिया को कर्ण भी जानते थे। परन्तु यन्त्र का निर्माण उन्होंने नहीं किया। तुम्हें प्रतीत होगा जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ, उस समय उस यन्त्र को भगवान कृष्णा के त्यागा था। दोनों यन्त्रों का प्रतिपादन हुआ और समय हुआ जब अभिमन्यु का निधन हो गया। जयद्रथ ने उनके लिए घृष्टता की। तब जब अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं सूर्य अस्त होने से पूर्व जयद्रथ का विनाश कर दूंगा। परन्तु जब अर्जुन अपने में ह्रास होने लगे, जयद्रथ प्रतीत नहीं हो रहा था कहाँ है? तां उस समय भगवान् कृष्णा ने अपनी आकाशवाणी के द्वारा महारानी से कहा, त्रुकेतुक विशारद कृत अन्वेषण यन्त्र छा जाना चाहिए। जब उन्होंने यन्त्र का प्रहार किया, तो वह छा गया, सूर्य समाप्त हो गया। भगवान् कृष्णा बोले अर्जुन! सूर्य समाप्त हो गया है चिता तैयार करो। तब अर्जुन

अग्नि की चिता मरण-शैय्या पर विद्यमान हो गए। जब मरण-शैय्या पर विद्यमान हो गए तो जयद्रथ इत्यादि सब युद्धस्थल पर समूह में एकत्रित हो गया। क्योंकि एक जो पाण्डवों में सेनापति था, इस युद्ध का सर्वेसर्वा था उसका निधन हो रहा है, अग्नि में प्रवेश हो रहा है। सब कौरव इत्यादि दृष्टिपात करने आगे आए साथ में जयद्रथ भी आया। तब भगवान कृष्ण ने अपनी आकाशवाणी से रूक्मिणी को पुनः यह कहा कि अब प्रकाश यन्त्र का प्रहार किया जाये। महारानी रूक्मिणी ने वही किया, सूर्य उदय हो गया। सूर्य तो उदय था ही, वह अन्धकार समाप्त हो गया तब भगवान कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! जयद्रथ तुम्हारे समीप है, सूर्य अभी उदय हो रहा है, सूर्य का प्रकाश आ रहा है। तब अर्जुन ने अपने अस्त्रों-शस्त्रों से अपने गाण्डीव-शस्त्र से उनके कण्ठ के ऊपर ले भाग को दूर कर दिया। भगवान् श्री कृष्ण बोले अर्जुन! तुम्हारा मस्तिष्क भी नीचे गिर जाएगा। यदि इसका मस्तिष्क भूमि पर गिर गया। तब अर्जुन ने द्वितीय यन्त्र का प्रहार किया संकल्प शक्ति का वह यन्त्र था। मुझे स्मरण है जब वह यन्त्र गति करता हुआ, जयद्रथ के पिता, गङ्गा के किनारे संध्या का पाठ कर रहे थे,गान कर रहे थे प्रभु के आँगन के लिए उनकी गोद में जा करके जयद्रथ के कण्ठ का ऊपरला भाग जा करके पहुंचा, तो पिता और पुत्र दोनों ही समाप्त हो गए। तो यह विज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है मानव को? यह वेद की परम्परा से इस वेद की आभा में सर्वत्र विज्ञान विद्यमान है।

12. कृष्ण और अर्जुन की वैज्ञानिक चर्चाएं

महाराजा अर्जुन का अपने आसन पर विद्यमान हो करके भयंकर वन में महाराजा कृष्ण से मिलान होता, चर्चाएँ होती, अस्त्रों-शस्त्रों की चर्चाए होती रहती। तो उन्होने नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों को जाना, वैज्ञानिक-क्षेत्र में उनकी जितनी गति थी, उतनी उस समय किसी भी प्राणी की गति नहीं थी। वे सर्व वेद की सुगठित रक्षार्थ में लगे थे। एक समय भगवान् कृष्ण और अर्जुन अनुसन्धान कर रहे थे। विचार-विनिमय चल रहा था। उन मन्त्रों में वे रमण कर रहे थे। रमण करते हुये उन्हें तीन दिवस हो गये। अन्न का भी पान नहीं किया। उन्हें संसार का ज्ञान भी नहीं रहा वेदों में वे इतने संलग्न हो गये। उन्होंने इस संसार को

क्षेत्र-क्षेत्र कहकर स्वीकार किया कि यह संसार तो क्षेत्र है और क्षेत्र है चेतन। ऐसा उच्चारण किया, ऐसा प्रतिपादन करके, वे इसी आभा में गति करने लगे। यह संसार तो एक क्षेत्र है यह विश्राम करने का क्षेत्र नहीं है यह गति करने का क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में परमात्मा विद्यमान है यह उन्होनें अपनी आभा में प्रगट किया। तीन दिवस हो गये, महारानी रूक्मिणी बोली, प्रभु! आप अन्न का भी पान नहीं कर रहे हैं। भगवान! कृष्णा ने कहा, देवी! मै ऐसा भोजन पान कर रहा हूँ, ऐसा भोजन मुझे प्राप्त हो रहा है कि मुझे यह स्थूल शरीर का जो अन्न है वह मुझे स्मरण ही नहीं आ रहा है। यह उनकी कितनी महानता थी।

13. वेद मन्त्र का मन्थन

वे उच्चारण कर रहे थे कि मैं सूक्ष्म शरीर के अन्नादि को पान कर रहा हूँ। जिससे मेरे जन्म-जन्मांतरों के संस्कार पवित्र बन जायें। जिससे मैं उस आभा में गति करने लगूँ, जिस आभा में गति करने के पश्चात मेरे नाना जन्मों की वार्त्ता मुझे स्मरण है। सौ-सौ जन्मों की वार्त्ता उन्हें स्मरण रहती थी। वह सब स्मरण-शक्ति के द्वारा उनके विचारों में, उनके मस्तिष्क में, उनके क्षेत्र में स्मरण-शक्ति अंकित रहती थी। शरीर का पालन-पोषण करना यह शारीरिक भोजन है और इस भोजन को जो मानव पान करता है, वह उसी भोज्य में रहता है। जो मानव आत्मा को भोजन नहीं देता वह आगे चल करके क्या लायेगा संसार में, उसके लिये क्या है? अरे मानव! जैसे तुम शरीर के भोजन को पान करते हो ऐसे आत्मा के भोजन को भी तो पान करने वाले बनो। आत्मा का भोजन भी तुम्हारे समीप होना चाहिये।

वह आत्मा का भोजन क्या है? वेद के विचारों को ले करके, अपने विचारों की ऊर्ध्वा उड़ान ही यह आत्मा का भोज्य माना गया है। आत्मा के भोजन में तुम संलग्न हो जाओ। जैसे भगवान कृष्णा, राष्ट्रीय विज्ञान में भौतिकवाद में रमण करते रहते, वहाँ आध्यात्मिकवाद के क्षेत्र की चर्चा करते रहते थे, वे सदैव उसमें रमण करते रहते थे। स्मरण शक्ति उन्हें जागरूक करती थीं, उसी में सदैव गति करते रहते थे। उन गोपिकाओं में अर्थात् गोपनीय विषय में वे सदैव गतिमान रहते थे। उन्होने कहा हे महारानी! तुम चाहती क्या हो ?

ऋषियों ने जब यह कहा, तो उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह चाहती हूं कि मैं यहाँ भंयकर वन में अतिथि सेवा तो कर सकूं।

14. संकल्प शक्ति

हमारे आचार्यों ने वैदिक साहित्य में संकल्प-शक्ति को एक महान शक्ति माना है संकल्प, तप और निष्ठा के साथ होता है। महारानी द्रौपदी संकल्प शक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही। नाना प्रकार का भोज्य आता रहा। भगवान कृष्णा भी उनकी सहायता करते रहे।

भगवान कृष्णा के जीवन की एक गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। जब महाभारत संग्राम समाप्त हो गया, कुरूक्षेत्र श्मशान स्थली बन गई, उस समय महाभारत के संग्राम से प्राणीमात्र दृष्टिपात करने के लिए सूक्ष्म रह गये। कौरवों के कुटुम्ब में केवल घृतराष्ट्र नेत्रहीन रह गए, माताएं रह गयी परन्तु पाण्डव पुत्रों ने विचारा कि अब हमें कहाँ गमन करना चाहिये।

लोहे के भीम का निर्माण

कुरूक्षेत्र में एक सभा हुई और युधिष्ठिर ने भगवान कृष्णा से कहा कि महाराज! अब हम कहाँ गमन करें? उन्होंने कहा, हस्तिनपुर चलो। जब युधिष्ठिर ने कहा, बहुत प्रिय। भगवन! गति करो, तो वहाँ से जब गति करने लगे तो भगवान कृष्णा नेत्रों को अन्तर्मुखी हो करके चिन्तन करके बोले, आज गति नहीं करेंगे। हम कल हस्तिनापुर घृतराष्ट्र के समीप जायेंगे। वे विद्यमान हो गये और अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गये। अपने यन्त्रों में विद्यमान हो करके उन्होंने एक लोहे का, भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर में एक स्थली पर स्थिर कर दिया। स्थिर करके वे पुनः कुरूक्षेत्र पहुंचे। अगला दिवस आया तब युधिष्ठिर ने कहा, चलो भगवन् पांचों पाण्डव और भगवान श्रीकृष्णा हस्तिनापुर आ गये। हस्तिनापुर आने के पश्चात अपने-अपने कक्षों में स्थिर हो करके वे अपने पितर से मिलन करने के लिए पहुंचे। महाराजा धृतराष्ट्र ने कहा, हे कृष्णा! मैं उसे कण्ठ से ओत-प्रोत करना चाहता हूं जिसने मेरे वंश को समाप्त किया है। उन्होंने कहा,

अच्छा भगवन! तो भगवान कृष्णा ने जान लिया। तो उन्होंने लोहे का भीम स्थापित कर दिया था, उन्होंने कहा कि महाराज! यह है तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। उस अंध नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को नष्ट कर दिया। तीन-तीन भाग हो गये। ! उसके पश्चात भगवान कृष्णा ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! आज भीम का विनाश हो जाता। यदि लोहे का भीम स्थापित न किया होता। भीम यदि उसके कण्ठ से लग जाता तो भीम का प्राणान्त हो जाता।

जो ज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता होते हैं उन्हें आगे की वार्त्ता स्वीकार होने लगती है। उन्हें आगे दृष्टिपात होने लगता है। तो भगवान कृष्णा जैसे महापुरूषों को उन्हें आगे की वार्त्ता स्मरण आती रहती थी। उनकी महत्ता उनके जीवन जिससे द्वितीय प्राणी उनकी शिक्षा का पान करने वाला हो। जैसे भयंकर वनों में अतिथि सेवा होती रही और भगवान कृष्णा विज्ञान में संलग्न रहते थे, अग्रणीय वार्ताओं को आध्यात्मिक वाद का चिन्तन करते थे। तो इसलिए प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि जहाँ भौतिकवाद में मानव शारीरिक भोजन देता है वहाँ आध्यात्मिक भोजन भी प्राणी को देना चाहिये। प्राणी के साथ दो प्रकार की क्षुधाएं होती हैंएक क्षुधा मानव को शारीरिक होती है और एक क्षुधा मानव को आध्यात्मिक होती है। भौतिक जो क्षुधा है, शारीरिक जो क्षुधा है उसको प्राणी भोज्य में लगा देता है। हे मानव! जहाँ तू यह शारीरिक भोज्य देता है, वहाँ आध्यात्मिक वाद में प्रवेश करके तू आत्मा को भी भोजन देने का प्रयास कर जिसके कारण तेरा मानव शरीर चेतनित बना हुआ है।

आत्मा तुम्हारे शरीर में जब तक है, तब तक यह चैतन्य बना हुआ है, स्थूल गति कर रहा है और जब यह आत्मा इस शरीर से निकल जाता है तो क्रिया शून्य हो जाता है।

वे क्रियाएं नहीं रहती, तो भोज्य वाला शरीर समाप्त हो जाता है।

15. षोडश कलाओं के जानने वाले भगवान कृष्णा थे।

भगवान कृष्णा के काल में भी विज्ञान पराकाष्ठा पर था।

16. भगवान कृष्णा व माता रूक्मिणी चर्चा

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जहाँ भगवान कृष्णा और महारानी रूक्मणी दोनों विद्यमान रहते थे। एक समय वे यह विचारने लगे कि भगवन्। यह जो संसार है यह एक समय मां काली के रूप में आने वाला है। भगवान कृष्णा ने कहा प्रायः ऐसा !हां प्रियतम- ही है। हमें क्या करना है? तो वह ज्ञानी बन गए और विज्ञान के उन तथ्यों को उन्होंने अपने में निर्धारण किया। जो हमारे यहाँ सोमभानु का-, सोमवृद्धि की कुछ विधाओं का उन्होंने अपने में भान किया। विज्ञान में अणुवाद का संग्राम हो रहा है। अणु परमाणुओं- को घोषित किया जारहा है उनका उद्गान किया जा रहा है। परन्तु वह ऐसा यंत्र है जो उनके परमाणुओं को अपने में शोषण कर रहा हैं।

17. भगवान कृष्णा का आश्रम वैज्ञानिक भगवान कृष्णा

जिस समय उनको वन प्राप्त हो गया था तो पाँचो पुत्र भगवान कृष्णा के आश्रम में, उनकी विज्ञानशाला में चले गए थे। उनकी विज्ञानशाला में अनुसंधान करते रहते थे। क्योंकि हमारे यहाँ ये माना गया है कि द्वापर के काल में भगवान कृष्णा का जो जीवन रहा है। वह विज्ञान में विशेष रहा है।

वे इस प्रकार के विज्ञान में रत्त रहते थे, कि वह यंत्रों के द्वारा दिवस को रात्रि और रात्रि को दिवस के रूप में परिणत कर देते थे। इस प्रकार का उनका अनूठा विज्ञान था।

18. द्वारिका में कृष्णा

एक समय जब विज्ञान की धाराओं में प्रवेश हुए तो पाँचाली को भी उन्होंने विज्ञान की कुछ धाराएँ प्रकट कराई थी। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय उनके आश्रम में एक सभा हुई थी। सभा द्वारिका के आँगन में हुई। उससे नाना वैज्ञानिक विद्यमान थे। पाँचाली

को उसमें निमन्त्रित किया गया और निमंत्रित करके पांचाली को ये कहा गया कि हे पांचाली! हम विज्ञान में रत्त रहना चाहते हैं, इन पाँचो राजकुमारों को तुम हमें प्रदान करो। तो उन्होंने कहा-बहुत प्रियतम भगवन्! मैं इनको महारथी दृष्टिपात करना चाहती हूँ। भगवान ने कहा-कि मैं भी इनको महारथियों के रूप में दृष्टिपात करूँगा। परन्तु विज्ञान के वांगमय में, इनकी विज्ञानशाला भी विचित्र बनेगी।

एक समय विज्ञान के लिए अनुसंधान होने वाला था। अनुसंधान में विज्ञानवेत्ताओं का एक समूह एकत्रित हुआ, जिसमें महाराजा घटोत्कच और भीम इत्यादि भगवान कृष्णा और पाँचाली के पाँचों पुत्र जिनमें एक का नाम स्वाति था, एक का नाम मृची था, एक का नाम स्वातभानु, एक का नाम विक्रमवाती था। पाँचवे का नाम श्वेम्भानु था। ये पाँचो राजकुमार थे। जो उनकी आभा में रत्त रहते थे।

19. वेद मन्त्र के आशय पर चिन्तन

भगवान कृष्णा की महाविज्ञानशाला में ये वैज्ञानिक एक समय एकत्रित हुए। महारानी रूक्मणी, भगवान कृष्णा, पाँचाली, घटोत्कच और भीम इत्यादियों का एक समूह एकत्रित हुआ। तो एकत्रित समूह में एक शब्द आया था वेदमन्त्रों का। उस शब्द के ऊपर पाँचाली याग किया करती थी और जब प्रातःकालीन याग में वह परिणत होती, तो उस वेद मन्त्र को उच्चारण करके वह याग में आहुतियाँ प्रदान करती रहती थी। जब आहुति प्रदान करती तो वही वाक् उन्होंने भगवान कृष्णा के समीप नियुक्त किया। उन्होंने कहा-प्रभु! वेद मन्त्र कुछ कह रहा है। जब और वैज्ञानिकों के तत्वावधान में वह वेद मन्त्र आया तो उसके तथ्य पर जाने का प्रयास किया गया। तो उसमें एक आपो का शब्द आता था उस शब्द के गर्भ में जब पहुँचे तो प्रतीत हुआ कि इसमें एक परमाणु है। वह परमाणु वायु के समीप आकर गमन करता रहता है और उस परमाणु का समुद्रों से, अंतरिक्ष से और अग्नि से उसका समन्वय रहता है।

इसी परमाणु के ऊपर जब वे अनुसंधान करने लगे तो घटोत्कच, भीम, पाँचाली के पाँचो पुत्र और भगवान कृष्णा ये एकान्त स्थली पर चले गए और विचारने लगे। विचारते-विचारते

उन्होंने एक यंत्र का निर्माण किया, उसमें से स्वर्ण के परमाणुओं को ले करके उसका पिपात बनाया। धातु पिपात बनाकर के उसी पिपात को लेकर के, उन्होंने व्रेती वायु की कुछ पुट लगा कर और उसमें ब्रह्माग्नि की पुट लगाकर के उन्होंने एक यंत्र का निर्माण किया जो सूर्य की किरणों के साथ गमन करता था और गमन करके वह निचले स्थलों पर ऐसा वृत्त बन गया कि एक स्थली पर जाकर के वह स्थिर हो गया। जहाँ चन्द्रमा की, पृथ्वी की और बुद्ध की सीमा का सीमांतर होता था।

20. भगवान कृष्ण का जन्म

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महाराजा कंस के कारागार में माता अपने में तपस्विनी बनी हुई है। गायत्री छन्दों का पठन-पाठन कर रही है और देवकी के गर्भ से ही भगवान कृष्ण का जन्म होता है। जब वह जन्म हुआ तो संसार अपने में वृत्तियों में रत्त हो गया। उनके जीवन में एक महानता की प्रतिभा रही है। जब वह जन्म लेता है तब ही उसकी महानता का जन्म होता है। उसके साथ-साथ जब महानता का जन्म होता है तो राजा कंस के, जो उस कारागार में प्रहरी थे, वे भी निंद्रा को प्राप्त हो गये। वह द्वितीय द्वार को त्याग करके पिता ने द्वितीय स्थान पर उसे अवृत्त कराया।

तो विचार-विनिमय क्या, केवल विचार यह कि जिस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तमयी महानता जिनके ऊपर होती है कारागार भी उसको मृत्युदण्ड नहीं दे सकता। कारागार में भी वह जीवन को ले करके ही आता है। तो इसलिए हे माता! तू तपस्विनी बन। और जब तेरे तपस्यामयी पुत्र का जन्म होता है तो माता तेरा जीवन एक सौभाग्यशाली बन जाता है।

माता का जीवन सौभाग्यशाली बन गया। कितना समय हो गया है भगवान कृष्ण के जीवन को, उनके जीवन की गाथाएँ, उनकी मनोनीत गाथाएँ प्रत्येक प्राणियों के हृदयों में उद्गीत रूपों में आज भी गान गाती रहती है। और गान गाती ही रहेगी। क्योंकि जब भी कोई माता अपने गर्भ से तपस्वी को जन्म देती है, महानता वाले को जन्म देती है तो उस माता का जीवन धन्य हो जाता है। तो हे माता! तू तपस्वी बन करके, तेरे जीवन में तपस्या

के प्रकाश-अंकुरों के अंकुरित हो करके, तू महानता को जन्म देती रहे।

21. नाग जाति को शरण

पातालपुरी में जाकर के क्रान्ति आयी, उसमें अप्रियता आ गयी थी। जब क्रान्ति हुई, तो वहाँ से नाग नाम की जाति, सम्प्रदाय इस समाज में आया। इस भारत भूमि पर आया, पाण्डु के राष्ट्र में आया भगवान कृष्णा ने उस नाग सम्प्रदाय को अपने में मिलाने का प्रयास किया। और उन्होंने समुद्र के तट पर एक कालिदह स्थान था उसमें नाग समाज को स्थित कर दिया था। उस समय भगवान कृष्णा की आयु लगभग इक्यावन वर्ष की थी जब नाग सम्प्रदाय को उन्होंने अपने में मिलाने का प्रयास किया।

भगवान कृष्णा ने अपने जीवन को बहुत कुछ जाना। महाराजा कृष्णा ने महाभारत का संग्राम कराया। यदि उस काल में वह नहीं होते तो न प्रतीत यह संसार न होता क्योंकि जब वह संग्राम हुआ तो उस समय यहाँ ऐसे-ऐसे यन्त्र स्थिर हो गए थे, जिनको वायु मण्डल में प्रहार करने से यह सर्वस्व संसार समाप्त हो जाता। महाराजा कृष्णा ने उस वैज्ञानिक रेखा को जाना जिससे उन महान परमाणुओं का प्रभाव, उस रेखा से बाहर न जा सके। वह रेखा युद्ध के प्रभाव को शान्त करती रही, उस रेखा को उस परम योगी ने जाना। आज हमें महानता देनी है। तो उनके जीवन पर, उनके वाक्यों पर दृष्टि पहुँचानी चाहिए।

तुम्हें मैं भगवान कृष्णा के उस काल में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ उनको राष्ट्रमयी क्रांति उदबुद्ध हो रही थी। भगवान कृष्णा के हृदय में यह आकांक्षा रहती थी कि मेरा राष्ट्र पवित्र बने।

तो एक समय ईश्वर नामोकरण के ऊपर, पातालपुरी में महाभारत काल के समय में, एक रक्तभरी क्रांति आई। पातालपुरी में जब रक्त भरी क्रांति आई, तो वह विज्ञान के कुछ अंकुरों को ले करके। जब क्रांति ऐसी आई क्या एक नाग सम्प्रदाय था। उस नाग सम्प्रदाय को वहाँ के एक दण्डित किया और नाग सम्प्रदाय के प्राणी, नाग गोत्र के प्राणी वहां से पातालपुरी से पृथक् हो गये। कुछ नाग प्राणी इस भारत भूमि पर आये। भगवान कृष्णा

के राष्ट्र में आ गये थे। तो भगवान कृष्णा ने, उस नाग, नाग जाति को, अपने राष्ट्र में उन्हें स्थापित दिया, भगवान कृष्णा की बड़ी प्रार्थना की और उनको उनके स्थान देने पर, उनका हृदय प्रसन्न हो गया। भगवान कृष्णा ने नाग जाति को इस भारत भूमि पर सम्मिलित कर दिया। वहीएक कालीदह स्थान था, भगवान कृष्णा ने, उस कालीदह में उनका एक भिन्न राष्ट्र का, राष्ट्रीयकरण कर दिया। और यह कहा कि मैं यहाँ सबसे प्रथम महाभारत के काल में एक रक्तभरी क्रांति पातालपुरी में आई और पातालपुरी में जब रक्त भरी क्रांति आई तो नागों को दण्डित किया, वे नाग छिन्न-भिन्न हो करके बिखर के राष्ट्रों में परिणत हो गये, विशेष तो इस भगवान कृष्णा की भूमि पर आए, उन्होंने आश्रय दिया और कालीदह में उसका राष्ट्रीयकरण कराया, त्रुटियों को विनाश करना, यह राष्ट्र का कर्तव्य है। जब भगवान कृष्णा का, राष्ट्र का निर्वाचन हुआ था तो संदीपन ऋषि महाराज उनके पूज्य गुरु थे। उन्होंने उनको द्वारका का धिराज बनाया। द्वारका के धिराज काल में जो वास्तविक राष्ट्रीयकरण होता है वह उन्होंने कराया।

मुझे एक बड़ी विचित्र वार्ता प्रगट की। कि भगवान कृष्णा के राष्ट्र में और आधुनिक राष्ट्र में जो गति चल रही है, संसार की, वहां एक नाग का वर्णन आता है। कि भगवान कृष्णा बाल्यकाल में सहपाठियों के साथ, कुछ नृत्त कर रहे थे। खिलवाड़ कर रहे थे, उनकी जो गेंदिका थी, वह कालीदह में चली गईं, वहां नाग रहता था। और देवियों ने कहा, आप यहाँ से गमन कीजिए, अभी यह नाग अपने में सुषुप्ति में है, यह जागरुक होते ही तुम्हें नष्ट कर देगा। तो मेरे प्यारे महानन्द जी ने ऐसा वर्णन किया है, कि उन्होंने उस सर्प के फन को छेदन कर दिया और बांसुरी की धुन के साथ में उसका छेदन करके ऊपर आए। यह तो आलंकारिक वार्ता है कि वे जो नाग जातियाँ आई, भगवान कृष्णा ने उन देवियों की पुकार से नाग जाति को इस भारत भूमि के प्राणियों में सम्मिलित कर लिया। वाक् तो यह है आलंकारिक वार्ता में भी इसका वर्णन किया जा सकता है। आलंकारिक यह वार्ता बन जाती है कि वह जो कालीदह में रहने वाला नाग था उसको उन्होंने छेदन कर दिया, उसको जब नाख दिया तो उसके पांच फनों पर नृत्त कर रहे हैं। यह योग का विषय बन जाता है। जब योगी, मन और प्राण को विवेक में परिणत हो करके अपने में अपनेपन को

दृष्टिपात करके, वह जो हमारे यहाँ दोषों का एक पांच फन बन जाते हैं, काम, लोभ, मोह, मद, क्रोध इनको योगी अपने में छेदन कर देता है और जब यह छेदन हो जाते हैं, तो योगी उस प्रभु का दर्शन करता है। भगवान कृष्ण का जीवन तो हमें उस वास्तविक छेदन वाली प्रणाली में प्रवेश करना चाहिए। तो मैं भगवान कृष्ण की यह चर्चा कर रहा था,

22. राजा

भगवान कृष्ण का जब निर्वाचन हुआ तो वह जहाँ बुद्धिमान थे, वहाँ वह चरित्र में महान थे, जहाँ चरित्र में महान थे, वहीं वे राष्ट्रीयता में कुशल थे। जहाँ राष्ट्रीयता में भी कुशल वहाँ व्याख्याता में भी बड़े विचित्र थे। तो भगवान कृष्ण को जब महाराजा संदीपन ने आचार्य ने उनका निर्वाचन किया तो संदीपन, विभाण्डक, भिण्डकेतु और महर्षि व्यास इन्होंने मिलकर निर्वाचन किया उनका और राष्ट्रीय करण कराया।

23. जीवन चर्या

भगवान कृष्ण का जीवन कैसा है? प्रातःकाल में जब तारामण्डलों की छाया रहती, आकाश गंगा में नाना मण्डल प्रकाश करते हैं, उस समय स्थली को त्यागना है अपनी भौतिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके, आध्यात्मिकवाद में अपनी साधना में रहना और उसके पश्चात् ब्रह्मयाग, देवयाग करना, देवयाग के पश्चात् विज्ञान के यंत्रों में पहुँच जाना, यंत्रों में निर्माणित हो जाना। उनकी एक पत्नी रूक्मिणी थी वह भी विज्ञान में रहती थी दोनों विज्ञान में रत्त रहते थे। बाल्यकाल का जीवन बड़ा विचित्र और यह राष्ट्रीयकाल का जीवन, वह अपने अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण करते रहते।

24. यन्त्र निर्माण

एक समय भगवान कृष्ण ने एक यंत्र का निर्माण किया था, संदीपन ऋषि महाराज के संरक्षण में, वे राष्ट्र दो माह तक अज्ञातवास में रहते थे और अज्ञातवास में हिमालय में चले जाते, कजली वनों में जहाँ संदीपन ऋषि महाराज उनके गुरुदेव का आश्रम था। वहाँ क्रियात्मक अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या का अध्ययन करना और क्रिया में लाना अपनी पत्नी को

भी ले जाते थे, एक-एक परमाणु के ऊपर विचार करके उन्होंने एक यंत्र का निर्माण किया था, छः माह में, क्या उस यंत्र को यदि चार घड़ी के लगभग सूर्य रह जाए, तो उसको अन्तरिक्ष में त्याग दो, तो रात्रि हो जाती है। काल भर रात्रि वही तारामण्डल अपने में गतिशील वह सूर्य की ऊपरी किरणों पर आच्छांदित है। वह सूर्य किरण की ऊर्ज्वा ले करके, एक कृष्णा नाम की कान्ति होती है, सूर्य में, उस कान्ति को जानना, उस कान्ति में यह विशेषता है कि जो प्रकाशमयी वाहनी किरणें है, उनको वह कृष्णा नाम की किरण अपने में धारण कर लेती थी। अन्धकार छा जाता था। उसी अन्धकार में रात्रि का वह दर्शन करती थी। जब वह दर्शन करने लगे, तो मुझे कुछ ऐसा काल स्मरण आ रहा है, छः माह में उन्होंने यंत्र को जाना, महाराजा संदीपन बोले कि हे कृष्णा! तुम्हारी पत्नी और तुम्हारा अध्ययन तो बड़ा गम्भीर है इसका उत्तरायण भी तो होना चाहिए। प्रकाशमयी, उन्होंने सुखलेशी किरणों को जाना और सुखलेश किरण में यह विशेषता है जो कृष्णा किरणों को अपने में निगल जाती और अन्धकार से प्रकाश में ले जाती। अन्धकार से प्रकाश में आना, उनके लिए बहुत अनिवार्य है।

तो दो यंत्रों को संदीपन ऋषि की सहायता से जाना। एक समय रात्रि काल में पति और पत्नी दोनों, अपनी द्वारिका में विद्यमान थे, एकान्त स्थली में भगवान कृष्णा ने कहा-देवी! यह जो यंत्र, हमें भारद्वाज मुनि के, यहां यह तो बड़े विचित्र है। आज उनका परीक्षण तो करो। तो मध्य रात्रि में उस यंत्र को प्रसारित कर दिया, जो यंत्र शुक्ल किरणों को अपने में कृष्णा को अपने में धारण करके और वह अणु और परमाणुवाद का एक खिलवाड़ था, जब उन्होंने उसे त्यागा तो रात्रि, अन्धकार में थी, रात्रि प्रकाश में हो गई। राष्ट्र प्रकाश में हो गया। तो वह राष्ट्र जागरुक हो गया, राष्ट्र ने विचारा, समाज ने, यह क्या खिलवाड़ हुआ है, समय सारणी कुछ कह रही है और यह सूर्य कुछ कह रहा है। तो जब देवी ने कहा प्रभु! अभी तो रात्रि है, आप रात्रि को उसी काल में लाने का प्रयत्न करो। उन्होंने कृष्णा यंत्रों का प्रहार किया तो वह शुक्ला किरणों को निगल गई, और कृष्णा किरणें वही अन्धकार में छा गईं। वही आकाशगंगा की माला बन करके वे मनके लोक लोकान्तर अपने में रात्रि के गर्भ में खिलवाड़ करने लगे। तो भगवान कृष्णा ने और उनकी पत्नी दोनों ने एक-दूसरे

में आक्रमण करके यंत्रों का परीक्षण करते रहते थे। रात्रि को प्रकाश में, प्रकाश को रात्रि में लाते रहते जब महाभारत का संग्राम हुआ था, यही दोनों यंत्र रूक्मिणी ने अपने गृह में त्यागे थे, जहाँ कुरुक्षेत्र में संग्राम बना हुआ था, वहाँ रात्रि हो गई और जयद्रथ को नष्ट करके पुनः प्रकाश हो गया। प्रकाश में जब रात्रि हुई तो जयद्रथ आया, और जब प्रकाश हो गया और प्रकाश के आते ही जयद्रथ का विनाश, मृत्यु हो गई।

25. राष्ट्र निर्वाचन

भगवान कृष्णा ने यह कहा था संदीपन से, कि भगवन! मैं राष्ट्र में जाना नहीं चाहता हूँ, मैं तो आपने जो उपदेश दिया, मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ। मुझे तो भगवान राम और भरत दोनों की चर्चाएँ स्मरण होती रहती हैं। राम कहता है मैं तो राष्ट्र को नहीं चाहता, मैं तो तपस्या करूंगा। भरत कहता है मैं पृथ्वी की गुफा में रहूँगा, क्योंकि मेरा जो भाई राम है, उसका एक आसन मेरे समान नहीं होना चाहिए, मेरा आसन नीचा रहना चाहिए। राष्ट्र को न भरत चाहता है, न राम चाहता है, न कृष्णा चाहता है। राष्ट्र को चाहा कौरव पाण्डवों ने, विनाश हो गया। इसमें स्वार्थवाद दोनों में तत्पर हो गया है। स्वार्थवाद से रक्त भरी क्रांति परिणाम यह हुआ कि हस्तिनापुर अग्नि के मुख में चला गया।

26. भगवान कृष्णा का जीवन

भगवान कृष्णा प्रातः कालीन कैसा पवित्र रहता था, प्रातः कालीन स्थान को त्यागना, देवी से कहते कि देवी! अपने क्रियाकलापों से निवृत्त हो और ब्रह्मयाग करेंगे, ब्रह्म का चिन्तन करना, प्रभु के यशोगुण का गान गाना उसके पश्चात् अपने में आहार की प्रवृत्ति बड़ी विचित्र थी। भगवान कृष्णा और उनकी पत्नी विज्ञानवेत्ता थे, विज्ञान के परमाणुओं को भी जानते रहते थे, परन्तु उस अन्न को पान करते, जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता था, उस अन्न को पान करना और प्रातःकालीन ब्रह्मयाग, देवयाग में परिणत हो करके अपने राष्ट्रीय क्रियाकलाप में लग जाते थे, रात्रि के काल में कुछ समय निद्रा में जाने से पूर्व विज्ञान के तंतुओं को जानते थे। भगवान कृष्णा उनकी पत्नी वह अपने में इतनी विज्ञानवेत्ता

थी कि एक यंत्र से रात्रि और एक यंत्र से दिवस हो जाता था।

27. सोमतिती रेखा

ब्रह्मास्त्र के एक यंत्र को त्यागने से जितना महाभारत का काल था वही सोमतिति रेखा भगवान कृष्ण की पत्नी रूक्मिणी जानती थी, जो महाभारत के अन्तर्गत एक रेखा बद्ध कर दिया था संग्राम को, उससे बाह्य परमाणु शक्ति का प्रभाव, बाह्य जगत में नहीं जाता था। इस प्रकार का विज्ञान, जब राष्ट्र के द्वारा होता है, या राजा इस प्रकार का होता है तो उसे भय किसका होता है। अरे, भय तो उन प्राणियों को होता है जो दूसरे प्राणियों का भक्षण करते हैं, उनको ब्रह्म ज्ञान होता नहीं, अन्धकारमय जीवन रहता है, वह राजा अपने को मृत्यु से दूर होने का सदैव प्रयास करते रहते थे। मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। वह शरीर तो अवश्य त्यागा जाएगा परन्तु इस मानव शरीर में आने का उद्देश्य यह है कि कि ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करो। यौगिक बनो। यौगिक बन करके राष्ट्रीयता का पालन करो, जिससे राष्ट्र महान बन करके तुम्हारे कर्मानुसार बरसने लगेगा।

28. रात्रि यन्त्र

महाभारत के संग्राम में, जब अर्जुन ने अपने पुत्र की, ममता में, मोह में परिणत हो करके अग्नि पर शव-आसन पर विराजमान हो गये थे, कि अब मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगा। अग्नि में समर्पित हो जाऊँगा। तो तब भगवान कृष्ण ने अपनी पत्नी से दूरभाष में यह कहा कि यन्त्र का प्रहार करो उन्होंने प्रहार किया। और उस यन्त्र से रात्रि छा गई, सूर्य अस्त होने को हो गया। तो उस समय उन्होंने कहा-हे अर्जुन! अब यह सायंकाल हो गया है, जागरूक हो जाओ और तुम मृत्यु को जाना चाहते थे तो, तत्पर हो जाओ। तो उन्होंने मृत्यु की शैय्या पर स्थिर हो गये। कौरव और पाण्डव दोनों पक्ष के प्राणी, वहाँ उस भूमि पर आ गये। अन्तिम समय दर्शन करने के लिए, परन्तु जयद्रथ भी आ गये, जिन्हें उन्हे मृत्यु को पहुँचाना था। उसी समय उन्होंने दूरभाष से देवी से यंत्र के लिए भगवान कृष्ण ने कहा-कि उस यन्त्र को, सूर्य वृत्तियों को, यन्त्रों को प्रहारित कर दो। यन्त्र को छा दिया, यन्त्र ने अन्धकार को निगल लिया और सूर्य उदय हो गया। उन्होंने कहा-हे अर्जुन! सूर्य

बहुत है तुम्हारे समीप, तुम्हारा शत्रु विद्यमान है। और नष्ट करो उन्होंने उसे नष्ट कर दिया। परन्तु उसके कण्ठ का जो ऊपरला भाग था वह पिता के आंचल में जा पहुँचा। पिता की भी मृत्यु हो गई, पुत्र की भी हो गई।

भगवान कृष्ण विज्ञानवेत्ता ही नहीं थे, वे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता भी थे, वे तपस्वी भी थे। वह प्रातःकालीन जब सूर्य उदय नहीं होता था तो अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, और प्रातःकालीन गायत्री छन्दों का और उनका अध्ययन करते हुए आत्मा, परमात्मा का चिन्तन और कर्त्तव्यवाद के ऊपर मनन करना और मनन करते हुए अपने में प्रातःकालीन याग करना, अग्निहोत्र करते, सुगन्धि कराना, यह उनका कर्त्तव्य था। पति-पत्नी दोनों विद्यमान हो करके अपनी क्रियाओं से निवृत्त होते रहते। उसके पश्चात वह विज्ञान में रत्त रहते, उसके पश्चात राष्ट्र के क्रियाकलापों में रत्त रहते, उनका जीवन नैतिकता में परिणत था, उनके जीवन में, किसी प्रकार की पद की लोलुपता नहीं थी, कर्त्तव्यवाद की भावना थी।

29. आहार से मन की पवित्रता

भगवान कृष्ण पवित्र आहार करते थे। आहारों में अपनी आत्मों को ऊँचा बनाया। आहार से ही तो मन पवित्र बनता है।

भगवान कृष्ण को ब्रह्म और प्रभु की उपाधि प्रदान करते रहते है। हम इसमें बड़े प्रसन्न रहते है। परन्तु उनके आचरणों को, आधार पर, अपने आचरण बनाए, अपनी प्रतिभा को ऊँचा बना करके, उसी प्रकार बुद्धिजीवी बने और कर्त्तव्यवादी बने।

भगवान कृष्ण ने एक आदेश अर्जुन को दिया और अर्जुन से यह कहा हे अर्जुन! एक समय वह आता है कि मनुष्य को मेरे मार्ग को अपनाना ही पड़ता है। तो यह उनका कितना सुन्दर शब्द है, यह कितनी सुन्दर प्रतिभा है। उन्होंने कहा कि इस मार्ग को अपनाना ही पड़ेगा प्रत्येक मानव को, कितना सुन्दर शब्द है इसका अभिप्रायः यह है कि एक समय वह आता है प्रत्येक व्यक्ति के लिए, कि उसे वेद की ज्योति के मार्ग को अपनाना ही पड़ता है, चाहे वह नास्तिकवाद में चला जाए, चाहे आस्तिकवाद में रहे, पापाचार में रहे, परन्तु उसे एक समय अपनाना पड़ता है यह मार्ग, यह तो प्रतीत नहीं

किसी भी काल में अपनाएं, और यह भी है कि दैत्य और देवताओं का भी यहाँ संग्राम होता रहता है। परन्तु यहाँ दैत्यों और देवताओं का संग्राम, जब तक रहेगा, जब तक वह सृष्टि रहेगी क्योंकि सृष्टि की रचना जो हुई है, यह विभाजन करने वालो की रचना है यह विभाजन करने वाला कौन है।

30. गीता का उपदेश ग्रहण करना

महाभारत काल में भगवान कृष्ण ने महाराजा अर्जुन को जो महान गीता का उपदेश दिया, आज के वैज्ञानिक उसको यन्त्रो द्वारा ग्रहण करना चाहते है। परन्तु महानन्द जी ने ऐसा कहा कि मनुष्य इस विज्ञान को जानने के लिये सफल भी हो सकता है और असफल भी हो सकता है यह हमारा कोई मन्तव्य नहीं परन्तु हम तो यह उच्चारण कर रहें है, जो भगवान कृष्ण ने गीता का जो उपदेश दिया था वह अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है। इसकी रूप रेखा अवश्य कह सकते है जब महान मेधावी बृद्धि से सम्बन्ध होता है और मेघावी बुद्धि इसका अनुसन्धान करती है तो विचार आता है कि अवश्य वह अनादि हो सकता है। वह अभी तक हो सकता है। कुछ वाक्यों, की शब्दों की रूप रेखा भिन्न हो जाती है।

31. पति-पत्नी का यज्ञ

भगवान कृष्ण प्रातः सायंकाल यज्ञ करते थे। इतना सुन्दर यज्ञ होता था कि जब प्रातः और सायंकाल अपनी अमृत वचनावली का पान कराते थे, तो पत्नीगण भी मौन हो जाते थे। एक समय वह यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के पश्चात उन परमाणुवाद पर विचार-विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया, जो यज्ञ में से परमाणुवाद उत्पन्न हुआ, उन परमाणुओं पर अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। नाना प्रकार के यन्त्र, नाना प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री भी उनके द्वारा रहती थी। उसी से वह उसका अध्ययन करने लगे। यज्ञ में संसार का शाकल्य जब ओत-प्रोत किया जाता है, तो वही शाकल्य यज्ञ वेदी को सुन्दर बना देता है। भगवान कृष्ण एक समय यज्ञ पर अध्ययन कर रहे थे, उनकी धर्म देवी रूक्मणी जी आ गई उन्होंनें कहा-प्रभु! आप यह क्या कर रहे है? उन्होंनें कहा देवी! मैं इस यज्ञ का विचार विनिमय कर रहा हूँ । जो मैंने प्रातः सुगन्धि की है उस सुगन्धि में कितनी तरंगें हैं और उनकी

कितनी गति हुई है। उसका मैं अध्ययन कर रहा हूं। उन्होनें कहा प्रभु! यह भी कोई विचार है? उनका अध्ययन करने से आपका क्या बनेगा? मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे इन हृदयों में, मेरे इन विचारों में कितनी तरंगे होगी? उन्होनें कहा-देवी! तुम्हारे हृदय में यह जो तरंगे हैं, इनका भी निवारण किया जा सकता है। इनकी भी गणना की जा सकती है, यदि तुम्हारे इन वाक्यों में अभिमान नहीं है।

मन और प्राण दोनों उस मानव शरीर में कार्य करते हैं। जब दोनों कार्य करते हैं। तो उन दोनों को अनेकता से एकता के सूत्र में ला देता है व्यापक ज्ञान है बाह्य जगत आन्तरिक जगत में उसकी तरंगें जो मानव धारण कर लेता है, मनस्तव में वह सत्ता व शक्ति हो जाती है वह अपनी मनोनीत भावनाओं को दूसरे के मन में प्रवेश कर देता है। वह योगी अपनी तरंगों को अपनी वाणी के तेज को मानव के हृदय को विदीर्ण कर देता है। तुम्हें प्रतीत होगा महाभारत का मध्य काल था जब अर्जुन को मोह हो गया, संग्राम के मध्य में दोनों सेनाएं विराजमान हैं एक स्थली में कौरवं और पाण्डव पुत्र दोनों विराजमान हैं। अर्जुन ने यह कहा कि यह तो सब मेरा सम्बन्धी परिवार है।

तो उस समय भगवान कृष्णा ने अपनी यौगिक सत्ता के द्वारा अपने मन को उसके अन्तःकरण में प्रवेश कर दिया। और यह कहा कि यह जो मन का मोह हो गया है इस मन के मोह को शान्त कर उन्होंने केवल ढ़ाई घड़ी के उपदेश में उसके हृदय को विदीर्ण करके उस स्थिति पर लाने का प्रयास किया कि यह तो तेरा कर्त्तव्यवाद है। परन्तु मैंने तुम्हें पूर्व में काल में वर्णन कराया कि इसका सम्बन्ध आहार से कहलाया गया है, मन को पवित्र बनाने से है, जब आहार पवित्र हो जाता है। आहार कैसा हो? ऋषि मुनियों ने तप किए हैं और जिस स्थली में तप किए हैं कौन से अन्नाद को पान करके तप किए हैं? उन्होंने उस अन्न को एकत्रित करके जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं होता। उस अन्न को एकत्रित करके योगाभ्यास में परिणत हो करके साधना करते हैं। उस साधना में भी अभिमान नहीं होता, उस साधना में भी विडम्बना नहीं होती, उस साधना में सतचित और आनन्द को लेकर के जो योगाभ्यास करने वाली प्राणी है वह मन को एक

दूसरे में प्रवेश कर देते हैं।

महाभारत के काल में जब कर्ण और अर्जुन दोनों का संग्राम हुआ और महाराजा शल्य को कर्ण का सारथी नियुक्त किया गया तो उस समय भगवान कृष्णा और अर्जुन को यह प्रतीत हुआ कि शल्य सारथी बन रहा है। कर्ण का सारथी कौन है? महाराज शल्य, जो माद्री का विधाता कहलाता था। भगवान कृष्णा और अर्जुन दोनों उनके समीप पहुंचे। उन्होंने कहा तुम इस कर्ण का सारथी न बन, क्योंकि तू हमारा नाती है। हमारे जीवन का साथी बन। परन्तु तुम कर्ण के साथ क्यों अपनी आभा प्रगट कर रहे हो? महाराज शल्य ने कहा, कि मैं सारथी बनूंगा, परन्तु अब मैं बन गया हूँ और जो तुम चाहते हो मैं उच्चारण कर सकता हूँ। भगवान कृष्णा बुद्धिमान थे। उन्होंने कहा शल्य आप एक कार्य कर सकते हो। उन्होंने कहा आप कर्ण को साहस न देना। उनको निराशा की वार्ता प्रगट करना जिससे वह हताश होते रहें। हताश की वार्ता प्रगट करो यह मेरी इच्छा है। तो महाराजा शल्य ने ऐसा ही किया।

जब कर्ण रथ में विद्यमान हुआ, तो शल्य कहता है, हे कर्ण! मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारी आज मृत्यु होगी। उन्होंने कहा, क्या उच्चारण कर रहे हो? मैं बलिष्ठ हूँ। अर्जुन जैसे कितने भी रथी आए जाएं वह भी मेरे लिए कुछ नहीं हैं। पुनः शल्य ने कहा, हे कर्ण! तुम्हारी मृत्यु है आज। परन्तु यही उससे निराशा की वार्ता प्रगट करता रहा। संग्राम होने लगा। परन्तु जब उनके रथों के चक्र वह जो रथ बह रहा था, उसमें कुछ अप्रीति हो गई, तो उस समय उन्होंने कहा हे शल्य! रथ के जो चक्र हैं इनको बाहर करो। उन्होंने कहा, मैं राजा हूँ। मैं तुम्हारा सारथी बन गया हूँ। परन्तु यह मेरा कार्य नहीं है। तुम सूत पुत्र हो। तो उन्होंने ऐसा कहा, अब कर्ण रथ से नीचे आ करके जब चक्रों को बाहरी करने लगे, कृष्णा जी ने कहा, हे अर्जुन! अब समय है इसकी मृत्यु का अर्जुन के शस्त्रों बाणों की वर्षा होने लगी। उसका शरीर छेदन होने लगा। उस समय कर्ण ने कहा, हे अर्जुन! मेरी भुजों में कोई शस्त्र नहीं है और तुम मुझे मृत्यु को पहुंचा रहे हो। कृष्णा जी कहते हैं, हे कर्ण! उस समय तुम कहाँ थे जब अभिमन्यु को निहत्थे तुमने नष्ट किया। उसकी भुजों में कोई शस्त्र नहीं था। आज तुम्हें अपना शरीर, अपने प्राण इतने प्रिय हैं। अर्जुन बाणों

की वृष्टि करता हुआ शान्त हो गया। कृष्णा जी बोले, हे अर्जुन! क्यों? उन्होंने कहा, इसकी भुजाओं में कोई शस्त्र नही है। उन्होंने कहा, तुम्हारी मृत्यु आ रही है। आज तुम मृत्यु को अपने समीप लाना चाहते हो। परन्तु यहाँ शल्य कह रहा था कर्ण तेरी मृत्यु आ गई। अर्जुन पुनः अस्त्रां की वर्षा करने लगा। परिणाम यह हुआ कि कर्ण की मृत्यु हो गई। यही विचार जब मानव के मस्तिष्कों में आता है तो वह निराशा में बदल जाता है।

32. अर्जुन कृष्णा चर्चा

एक समय भगवान कृष्णा और अर्जुन दोनों समुद्र के तट पर विद्यमान थे। दोनों का वैज्ञानिक तथ्यों के ऊपर विचार-विनिमय हो रहा था। भगवान कृष्णा नाना प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रां में प्रवेश कर रहे थे। उन्होंने एक ऐसे यन्त्र का निरीक्षण किया था। जिसको वायु में रमण करने मात्र से सूर्य की किरणों को वह यन्त्र निगलता था। सूर्य की किरणों को निगल करके द्यौ अथवा विद्युत इस सूर्य में विद्यमान हैं जिस विद्या से, जिस प्रकाश से वह इस रात्रि को अपने में धारण कर लेता है अथवा चन्द्रमा के प्रकाश को अपने में धारण कर लेता है। वही सूर्य का प्रकाश भगवान कृष्णा का यन्त्र उस प्रकाश को निगल रहा थे और क्योंकि वह द्यौ का जो प्रतिनिधि माना गया है। हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ में अथवा सृष्टि के गर्भ में कुछ ऐसा माना जाता है क्या सूर्य द्यौ का एक प्रतिनिधि है। क्योंकि द्यौ से यह प्रकाश लेता है और उसी प्रकाश को ले करके यह रात्रि को अपने में धारण कर लेता है। चन्द्रमा के प्रकाश को कान्तिमयी बना करके प्रकाश में ले जाता है। परन्तु वही प्रकाश जो चन्द्रमा को अपने में धारण करने वाला हो रात्रि को अपने गर्भ में प्रवेश कराने वाला हो। वही भगवान कृष्णा का यन्त्र था जो सूर्य व्राणकेतु यन्त्र कहलाता था। वह यन्त्र सूर्य की किरणों को निगल रहा था वह यन्त्र वायुमण्डल में त्याग दिया जाए निगल करके वो रात्रि में उस यन्त्र से प्रकाश लिया जाता था। वही प्रकाश भगवान कृष्णा ने यन्त्रों में स्थिर कर दिया। उसी यन्त्र से और नाना प्रकार के यन्त्रां का विकास किया जा रहा था। वह यन्त्र वायु मण्डल में त्याग दिया जाए तो वायु को दूषित भी कर रहा था। उस समय भगवान कृष्णा ने कहा, हे अर्जुन! मैंने एक यहाँ इस प्रकार का यन्त्र स्थिर किया

है सूर्य किरणों को धारण करने वाला अथवा निगलने वाला यन्त्र है मेरा जो पच्चीस राष्ट्रों के प्राणियों को वायुमण्डल में त्यागते उनके प्राणों का हनन कर सकता है। जब भगवान कृष्णा ने ऐसा कहा तो अर्जुन ने कहा कि प्रभु! जब यह वायुमण्डल इतना दूषित हो जाएगा, वायुमण्डल में इतना दूषितपन आ जाएगा, तो प्रभु! उसके शोधन करने का आपके द्वारा कोई उपाय भी होनी चाहिए। शोधन करने की क्षमता भी होनी चाहिए। तो उस समय भगवान कृष्णा ने कहा, हे अर्जुन! इस प्रकार वायु मण्डल दूषित हो जाता है, पृथ्वी के गर्भ से खनिज को वैज्ञानिक अपने में धारण कर लेते हैं अथवा राष्ट्र की सम्पदा बना करके उसे वायु में त्याग करके वायु मण्डल दूषित हो जाता है। प्राण-घातक बन जाता है। तो उस समय हम उसको शोधन करने के लिए हम उस समय याग करते हैं और अग्नि में घृत को प्रवेश करते हुए अग्नि में सूक्ष्म रूप बना करके वायुमण्डल में प्रवेश करा देते हैं और वह वायुमण्डल में जितने भी दूषित परमाणु हैं उनको वह परमाणु निगलते रहते हैं और शुद्ध वायुमण्डल बनाते रहते है अथवा निर्माण करते रहते हैं।

तो वेद का ऋषि कहता है, वेद का मन्त्र कहता है हे मानव! तू याज्ञिक बन तू दूषित कर्म न कर, याज्ञिक बन, और याग कर्म करने वाला बन। उस समय भगवान कृष्णा ने यही कहा था हे अर्जुन! हमें याग करना चाहिए। मैं याग करता रहता हूँ। वह याग की प्रतिक्रिया भी जानते थे। तो याग एक ऐसा कर्म है इस संसार में प्रायः महान् माना गया है। जो हमारे ऋषि-मुनि परम्परागतों से ही याग कर्म करते रहे हैं। जहाँ भी गुरु शिष्य का संवाद आता है गुरु शिष्य एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके वह याग करते हैं याग क्यों करते हैं क्योंकि याग से वायुमण्डल पवित्र बनता है। गृह में पवित्रता आती है और वायुमण्डल को शोधित किया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ वैज्ञानिक तथ्यों में ऐसा माना है कि शब्दों के साथ में मानव के चित्र चित्रण करते रहते हैं। वायुमण्डल में जितने भी शब्द विद्यमान हैं। वे चित्र के सहित विद्यमान हैं।

भगवान कृष्णा, अर्जुन दोनों याग की कल्पना कर रहे हैं। विज्ञान के ऊर्ध्वा स्वरूप में जाना चाहते हैं याग के द्वारा जानना चाहते हैं याग ही एक शब्द है जो मानव के हृदय को व्यापक बनाता है। अपनी इन्द्रियों पर संयम करना चाहिए। जिससे मानव धर्म और

मानवीयता को जान सके।

जिस समय इन्द्रप्रस्थ में याग हुआ तो उस याग में जब महाराजा कृष्णा का निर्वाचन होने वाला था तो महाराजा शिशुपाल ने उनको अपशब्दों का प्रतिपादन किया, वह अपशब्द देता ही रहा। भगवान कृष्णा ने अपने सुदर्शन चक्र से जो संकल्प के द्वारा वह वैज्ञानिक यन्त्र था और उसके कराठ के भाग को दूरी कर दिया। परन्तु जब वह सुदर्शन चक्र वास्तव में क्या था? वह भगवान कृष्णा ने कैसे जाना? क्योंकि महाराजा इन्द्र, जो त्रिपुरी के राजा थे, उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया था, जिस पोथी में सूर्य विद्या पर, नाना प्रकार की किरणों के ऊपर उनका अनुसन्धान था। तो किरणों में एक संकल्प शक्ति होती है जो सीमा में बद्ध रहती है। परमात्मा के संरक्षण में रहती है। जैसे सूर्य की एक ही किरण है जो स्वर्ण को निर्माणित कर रही है। एक ही किरण है जो ओर भी नाना धातुओं का निर्माण कर रही है। रत्नों का भी निर्माण कर रही है। परन्तु इसी प्रकार वह जो रत्नोमयी किरण है और भी नाना प्रकार की जो किरणों हैं परन्तु उन किरणों में एक संकलन व्रीत नाम की एक किरण होती है उस किरण को यन्त्रों में लाने से सुदर्शन चक्र का निर्माण हो जाता है, उस सुदर्शन चक्र का भगवान कृष्णा ने निर्माण किया और वह संकल्पशक्ति से गति करता था। इसी प्रकार जो संकल्प शक्ति है उसके भी परमाणु होते हैं। नाना किरणें होती हैं और वह ऐसी भयंकर संकल्प शक्ति है, जिस मानव को नष्ट करना चाहते हो वही कृत्य कर जाता है। परन्तु एक यन्त्र ऐसा है जो भुजों में है और अग्नि की किरणों से वह गति कर रहा है और गति इतनी तीव्र होती है उसकी गति को गणित नहीं कर सकते, एक एक शब्द को जब तक उच्चारण किया जाए, इतनी देरी में लाखों प्रतिक्रियाएं, लाखों परिक्रमाएं उस यन्त्र की हो जाती हैं। तो इस प्रकार के यन्त्र आधुनिक जगत में नहीं है वैज्ञानिक वरुणास्त्र का निर्माण तो करना चाहता है परन्तु कुछ किया भी है परन्तु वह वस्तु अभी नहीं आ सकती।

आधुनिक काल लगभग सहस्रों यन्त्र इस प्रकार के हैं जो अग्नि के मुख में चले गए हैं और आधुनिक वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा वह हमारा यन्त्र कहाँ चला गया? वह अग्नि के मुख में चला गया है या समुद्र की आन्तरिक गति में चला गया है या अवशेष

ऊर्ध्वा में गति कर गए हैं? आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा है, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रगट कराने के लिए, मैं एक परिचय करा रहा हूँ और वह परिचय यह है कि दक्षिण ध्रुव के आँगन में एक स्थली है जहाँ यन्त्र समाप्त हो जाते हैं। मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि द्वापर काल के कुछ वैज्ञानिकों की एक स्थली बनी हुई है जो चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों की आकर्षण शक्ति जहाँ मिलान करती है वहाँ एक स्थली बनी हुई है, वहाँ एक यन्त्र विद्यमान है। वहाँ भीम, घटोत्कच्छ, अर्जुन और भगवान कृष्ण चारों विद्यमान हो करके, अनुसन्धानशाला में यन्त्रों का निर्माण करते थे।

33. जयद्रथ

महाभारत के काल में जिस समय जयद्रथ को नष्ट करने की प्रवृत्तियाँ भगवान कृष्ण के हृदय में जन्म हुई तो उस समय उन्होंने दूरभाष से अपने गृह दुरभाष किया कि इस समय सूर्य की किरणों का समाप्त किया जाए। जो उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था और यन्त्र से सूर्य की किरणों रात्रि का रूप धारण कर गई थी। जब अर्जुन उसकी मृत्यु शय्ैया पर विराजमान हुए उस सयम भगवान कृष्ण बोले जयद्रथ इत्यादि जब सर्वत्र आ गए, आ जाने के पश्चात् उन्होंने दूरभाष से भगवान कृष्ण ने कहा स्वांगनी यन्त्र का प्रहार कर दिया जाए, जिससे सूर्य की किरणों से यह रात्रि समाप्त हो जाए। महारानी रुक्मिणी ने ऐसा ही किया। रात्रि का काल समाप्त हो गया था। सूर्य उदय हो गया था। उन्होंने कहा, हे अर्जुन! सूर्य उदय हो रहा है सूर्य अपनी पराकाष्ठा पर है। जयद्रथ विद्यमान है, इसको शस्त्रों से छेदन किया जाए, तो उस समय अर्जुन ने अपने शत्रु को नष्ट किया था। यह विज्ञान की प्रतिभा भी जो आधुनिक काल का विज्ञान इस प्रकार अब तक नहीं उपलब्ध हुआ। इस प्रकार का विज्ञान द्वापर के काल में था। इसी विज्ञान की धाराएँ कुछ चन्द्रमा और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में उनकी स्थलियों का कृत्य हो रहा है। उन्होंने कुछ यन्त्र वहाँ विद्यमान किए हैं और जिस भी काल में उनकी सीधी छाया समुद्र में उस स्थली पर जाती है जहाँ दक्षिणी ध्रुव की छवि का अक्रोतों में प्राप्त होती रहती है। जब आधुनिक काल के विज्ञान के यन्त्र उस स्थली पर उसी परिधि में आकर उसी प्रतिक्रया में जब गति करते हैं तो वह

जो यन्त्र ऊर्ध्वा में गति कर रहा है वहाँ का जो विज्ञान अप्रोत कर रहा है समुद्र में उनका सूक्ष्म अग्नि का काण्ड बन करके, उनका एक-एक धातु का कण बन करके वायु-मण्डल में मिश्रित हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को इसलिए उसकी प्रतीति नहीं होती।

34. ज्योति लिंग

एक समय जब ज्योति लिंग विचार में नही आया तो बब्रीक, बभुरभान और घटोत्कच्छ विज्ञानशाला में से भ्रमण करते हुए वह भगवान कृष्णा के द्वार पर पंहुचे भगवान कृष्णा एक समय समुद्र के तट पर विद्यमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे जिससे सूर्य के ऊपर छा जाने से परमाणुवाद रात्रि लिंग उत्पन्न हो जाए। रात्रि के तुल्य यह दिवस अप्रतियों में रमण करने लगा। तो जब वे तीनों उनके द्वार पर पंहुचे तो भगवान कृष्णा ने कहा, आओ, हे वैज्ञानिको! आओ, वह विराजमान हो गए। विराजमान हो जाने के पश्चात भगवान कृष्णा ने कहा, कहो बब्रीक तुम्हारा, आगमन कैसे हुआ? तुम तो तीनों ही महा विज्ञान के गर्भ में भ्रमण करते हो, आज तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? तो महाराजा बब्रीक ने कहा, हे प्रभु! यह वेदमन्त्र है और वेदमन्त्र कहता है कि हमारा जो नेत्रों में प्रकाश आता है, क्योंकि निर्माण करने वाला प्रभु है। निर्माण होता है माता के गर्भ से। क्यांकि वही उसकी स्थली बनी हुई है तो यह निर्माण हो गया है और जिस वस्तु का निर्माण होता है वह जड़वत् है। निर्माण करने वाला चैतन्य है। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं उसमें ज्योति लिंग को कौन भरण करता है? तो इस चिन्तन में भगवान कृष्णा भी लग गए और भगवान कृष्णा ने उस समय यह कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है उनमें जो प्रकाश आता है वह एक अणु है, वह एक परमाणु है। वह एक अणु की कृतिका कहलाती है। वह प्रकाश अणु के गर्भ में एक आत्मा विद्यमान है, उसे अणु कृति को हम आत्मा कहते हैं, कृतिका भी कहते हैं। वह इस शरीर में विद्यमान है और विद्यमान हो करके उस आत्मा का प्रकाश गति करता है। आत्मा का प्रकाश जब गति करता है वही इस प्रकृति के परमाणुओं से मिलान करता हुआ अपने में साकार और सूक्ष्म स्वरूप को धारण करता

रहता है।

तो जब उन्होंने भगवान कृष्णा ने यह उत्तर दिया, उन्होंने कहा, प्रभु! मैं विज्ञान की दृष्टि से दृष्टिपात करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा विज्ञान तो यह कहता है, वेद का मन्त्र भी तुमने दृष्टिपात किया होगा। हे वैज्ञानिको। वेद मन्त्र यह कहता है कि एक परमाणु है, परमाणु के गर्भस्थल में एक सूक्ष्म और परमाणु है। उस परमाणु में इतनी शक्ति है, जब उसका विभाजन किया जाता है जब परमाणु उससे संघर्ष करने लगते हैं तो वह परमाणु अग्नि का चयन करते हैं। अग्नि का चयन करते हुए वही सूक्ष्मवत् बन करके आत्म ज्योति के रूप में प्रगट होते रहते हैं। वह आत्म ज्योति कहलाते हैं जो अनुभव का विषय है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। प्रकृति का विषय नहीं है, तरंगों का विषय नहीं है, वह समाधि और आनन्दवत् का विषय कहलाता है। जब यह वाक् उन्होंने प्रगट किया है, तो उन्होंने कहा-प्रभु! हमने एक यन्त्र का निर्माण किया है उसके ऊपर तुम अपनी टिप्पणी दो उन्होंने कहा कि हमने एक यन्त्र का निर्माण किया है कि मंगल के और बुध के मध्य में एक यन्त्र का निर्माण किया है और वह यन्त्र का आयु लाखों वर्षों का है और उस यन्त्र से गति प्रवाह होते रहते हैं, समुद्रों से उसका मिलन होता है तो उस मिलन में, उस की छाया में जो भी यन्त्र आ जाता है वह भस्माभूत हो जाता है। उस यन्त्र का एक कण भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह परमाणु इतने शक्तिशाली हैं, इतनी शक्तिशाली ऊर्ज्वा है जिस ऊर्ज्वा से सूर्य प्रकाश देता है, जिस ऊर्ज्वा से द्यौ अपने में द्यौ बनी रहती है, जिस अग्नि के द्वारा जिन-जिन परमाणुओं से वह गति करने वाला जगत् एक सूत्र में गति कर रहा है, वही इस प्रकार ऐसा यन्त्र हमने निर्माणित किया है। उसकी छाया पृथ्वी पर आती है और पृथ्वी पर भी समुद्र के एक भाग में जाती है और समुद्र के जैसे ही भाग में पहुंची, वहाँ से वह परमाणुओं को निगलना प्रारम्भ कर देता है। जब वह परमाणुओं का निगल लेता है वह आभा प्रति नाम के परमाणु हैं, जिन परमाणुओं का समन्वय ले करके हमने अन्तरिक्ष में से एक यन्त्रानम् वृत्त बनाया है और वह यन्त्र उसमें स्थिर है और उसकी छाया जाती है वह यन्त्र पृथ्वी मण्डल के यन्त्रों को अपने में निगल जाता हैं जब इस प्रकार के यन्त्र का उन्होनें निर्णय कराया तो भगवान कृष्णा ने कहा, वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है। चलो, यन्त्र को

दृष्टिपात करते हैं। वह अपनी विज्ञानशाला में ले गए, विज्ञानशाला में उन यन्त्रों को उन्होंने दृष्टिपात किया। इस प्रकार का प्रतिपादन विज्ञान के युगों में प्रायः होता रहा है।

35. गौ का महत्व

भगवान कृष्णा गऊओं के मध्य में विद्यमान हो करके उनके श्वास पर, उसके दुग्ध पर उनके शौच इत्यादियों पर अनुसन्धान करते थे, विचारते रहते थे यह गऊ क्या देती है? हमें जिसका श्वास भी दूषित परमाणुओं को निगलता है। इसका मूत्र भी दूषित परमाणुओं को निगलता है इसका गौ घन भी दूषित परमाणुओं को निगलता है और इसकी जो गतियाँ हैं वह भी परमाणु को नष्ट करती रहती हैं। इस प्रकार इसका जो दुग्ध है, घृत है वह आयुर्वेदाचार्यों ने इसकी प्रशंसा की है। यह कहा है कि गौ घृत वायु नाशक है, वायु का विनाश करने वाला है। यह जो घृत है यह तेजस्वी है, यह तेजोमयी बनाने वाला मानव के बहुत से रुग्णों को शान्त कर देता है। जब इस प्रकार के पशुओं का हृस होता हो। उनको नष्ट किया जाता हो तो यह समाज ही रह सकेगा।

जब भगवान कृष्णा अपने गुरुदेव संदीपन ऋषि के द्वारा वह अध्ययन करते थे, तो वह भी यही कहा करते थे कि प्रभु! मैं आध्यात्मिक सोम का पान करना चाहता हूँ। तो संदीपन ऋषि महाराज ने उसका उपदेश दिया। वह सोम का पान कराते रहते थे, आध्यात्मिकवाद क्या, दर्शनों की प्रतिभा में, दर्शनों की भाषा में अपने आत्मा और परमात्मा के समन्वय की चर्चा करना, वह दोनों का सम्मिलान होता है, उसके घर्षण से जो झरनियाँ झरती हैं, उसको सोम कहते हैं।

36. गीता का उपदेश

भगवान् कृष्णा और अर्जुन दोनों का सम्वाद सेनाओं के मध्य में प्रारम्भ हुआ। जब सेना के मध्य में दोनों का संग्राम हो गया विचारों का, विचारों में मत भेदन हुआ, नाना प्रकार के विचार एक दूसरे के विपरीत बने। परन्तु विपरीतता में यह हुआ, कि भगवान् कृष्णा ने कर्त्तव्यवाद के ऊपर अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! तू तो अपने कर्तव्य का पालन कर, क्योंकि कर्त्तव्य ही संसार में एक महान् है। कर्त्तव्य ही मानव को ऊंचा बनाता है। उन्होंने

कर्त्तव्य की विवेचना करते हुए कहा कि मानव को ब्रह्म को अपना साक्षी करते हुए, हे अर्जुन! ऐसा हो जाना चाहिए कि उसमें असक्त नहीं होनी चाहिए। एक मानव आशक्ति वाला होता है एक उससे रहित होता है; असक्त रहित होना जो प्राणी है वह कर्त्तव्यवाद का पालन करता है। जैसे एक मानव न्यायालय में न्यायाधीश है। उसका पुत्र और एक समाज का प्राणी है, परन्तु न्यायालय में न्यायकर्त्ता न्याय करना चाहता है, तो यदि न्याय को निष्पक्ष हो करके करता है तो वह कर्त्तव्य का पालन करता है। कर्त्तव्य का पालन करके दोनों ही एक ही प्रकार के दोषारोपण होने वाले प्राणी हैं, परन्तु जब अधिराज इस प्रकार की दशा में परिणत हो जाता है, तो वह कर्त्तव्य का पालन कर रहा है।

इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन! तुम कर्त्तव्य का पालन करो, क्योंकि कर्त्तव्य ही मानव को ऊंचा बनाता है संसार में। जब मानव को विवेक होता है, और विवेक में यह जान लेता है कि जितना भी यह स्थूल जगत् है। यह स्थूल जगत् आज नहीं तो कल इसकी विकृतता होनी है और यह स्थूल नहीं रहेगा। सूक्ष्म बन जाना है और सूक्ष्म को स्थूल बनना है। इस प्रकार की जब जागरूकता मानव के अन्तर्हृदय में विद्यमान हो जाती है, वही अन्तर्हृदय उसका पवित्र बन करके ऊर्ध्वा में ले जाता है। वह ऊर्ध्वा की वेदी पर ले जा करके अन्त में जब गुरु शिष्य का घनिष्ठ भाव बन जाता है, तो आचार्य यह कहता है, कि हे शिष्य! तू आ, मुझे अच्छी प्रकार के जान, तू अच्छी प्रकार से मुझे दृष्टिपात कर, तेरा कल्याण होगा। जब तू संसार को, प्रभु को या और भी कृतियों को बाह्य जगत् में अपने से दूरी दृष्टिपात करेगा, तो तेरा कल्याण नहीं होगा। तेरा कल्याण उस काल में होगा जब तू अपने को कर्त्तव्यवादी बना करके, कर्त्तव्यनिष्ठ बना करके, और कर्त्तव्यनिष्ठ बनता हुआ अपने में असक्त न होता हुआ, क्रिया-कलाप करता चला जाता है, वह मानव महान बनता है, वह परमार्जित बनता है। जिससे तुम्हारा हृदय पवित्र हो जाये तो जब इस प्रकार अर्जुन ने कहा, प्रभु! यह मैं कैसे जानूंगा, इसको मैं कैसे अनुभव में लाऊं? तो उन्हांने कहा कि तुम संसार को अपने कृतियों में दृष्टिपात करो, जिससे तेरा मानवीय जीवन उस आभा में न रहे परन्तु जब तू अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करेगा,

ममता हो त्यागेगा, तो उस समय तेरी प्रतिभा ऊंची बन करके रहेगी।

37. वास्तविक स्वरूप का विराट स्वरूप

यौगिक विचारधारा में, न्हांने अपने में सूत्रित हो करके और उनसे यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! मैं तो यह जानना चाहता हूँ, जैसा आप मुझे उच्चारण कर रहे हैं वैसा मुझे दृष्टिपात कराइये? आप मेरे सखा है, आप मेरे पूज्य हैं, आप मुझे उस रूप को दृष्टिपात कराइये जिससे मेरा कल्याण हो और मैं विश्वसनीय बन जाऊ। तो भगवान् कृष्ण ने अपने वास्तविक स्वरूप को दृष्टिपात कराया। उन्होंने कहा जब मानव का व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश होता हे तो समष्टि में साम्यता आ जाती है और साम्यता को तू दृष्टिपात कर। उस समय उन्हांने अपने ब्रह्ममयी स्वरूप का वर्णन कराया और वर्णन कराकर इसके अन्तरात्मा में उन्हें अपने को प्रवेश किया, तो उन्हें नाना प्रकार प्राण सखा के, प्राण के ही रूपों में ले गए। जैसे जब प्राण की प्रतिक्रिया में योगी अपने शिष्य को ले जाता है, तो नाना प्रकार की जो नस-नाड़ियां हैं। उनमें जो विचरण करनेवाला प्राण है, प्राणत्व को आभा में लाना प्रारम्भ करता हे। जब आभा में लाता है, तो वही प्राण, कहीं रेचक, कहीं कुम्भक में परिणात हो जाता है। वही प्राण कहीं कुम्भक में आता हुआ अपने में शून्यता को प्राप्त करा देता है। वही प्राण जब किसी एक ही अंग में लाना होता है, वहाँ का अंग बलिष्ठ बन जाता है। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इसी आभा में नियुक्त कराया और यह प्राणसूत्र की विवेचना उन्होंने की। उस प्राण में अपने को पिरो करके यह कहा कि हे अर्जुन! तू मुझे दृष्टिपात कर, तू मेरे में अर्पित हो, और मेरे में अर्पित हो करके तू मुझे अन्तर्हृदय से दृष्टिपात कर। संसार में गुरु शिष्य का कोई भी सम्वाद हो, वह उसी प्रकार उसे जागरूक करते रहे हैं। आधुनिक काल का यह जगत् नहीं है, परम्परागतों से ही अतीत के काल में भी, प्रायः ऐसा होता रहा है क्या प्रत्येक मानव, मानव को, अपनी प्रेरणा दे करके, प्रेरित करके, उसे प्रभावित करके, उसमें उसे लाता रहा है। उसी स्वरूप में

परिणात करता रहा है।

38. सुदर्शन

भगवान कृष्णा ने द्वापर के काल में अपने सुदर्शन चक्र का निर्माण किया था। सुदर्शन चक्र की भांति यह सूर्य चक्र है और पृथ्वी उसके आरे लगे हुए हैं, इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड का चक्र प्रारम्भ हो रहा है। तो तीस लाख पृथ्वियों के आरे बने हुए हैं क्या यह एक माला बनी हुई है जैसे शब्द से शब्दों का निर्माण होता है और वह एक माला बन जाती है उसी प्रकार यह भी एक माला कहलाती है। माता कहती है आचार्य कहते हैं अपने बाल्य ब्रह्मचारियों से हे ब्रह्मचारियो! तुम वैज्ञानिक बनो और तुम कैसे विज्ञानवेत्ता बनो? तुम्हारे हृदय में एक दूसरे के प्रति सहयोग होना चाहिए। क्रोधाभास नहीं होना चाहिए। यह जो क्रोधाभास है यह मानव के जीवन को अपंग बना देता है यह जो तुम्हारा विज्ञान है, अनुसन्धान है। यह तुम्हारे जीवन को प्रकाश में ला देता है।

39. आहार चर्चा राधा संकीर्तन

भगवान् कृष्णा महारानी रूक्मणी से यह कहते थे कि हे देवी! संसार में आहार पवित्र होना चाहिए, आहार नहीं होगा, तो व्यवहार नहीं बनेगा और व्यवहार नहीं बनेगा तो हमारी मानवीयता नहीं बनेगी और मानवीयतव नहीं बनेगी तो किसी को भी ऊर्ध्वा में पहुंचा नहीं सकेंगे। हम अपने विचारों से समाज को महान् नहीं बना सकते। आधुनिक काल में कृष्णा का कीर्तन हो रहा है। जो अपने जीवन में दुर्गन्ध पदार्थों का पान नहीं करती थी, उसे कहते हैं राधा और द्वितीय रूपों में उसे कृष्णा पत्नी कहते है। राधा कृष्णा दोनों का संकीर्तन हो रहा है परन्तु कीर्तनवादी, मांस का भक्षण कर रहे है। उनका जीवन, उनका विचार, विचारों को त्याग दिया है केवल यह चाहते हैं कि नाम कीर्तन से हमारी मुक्ति हो जाए। अरे! मुक्ति तो उस काल में होगी, जब मानव अपने कर्म वचन से ऊँचा बनेगा।

40. विद्युत

इस विद्युत के विशेषण में तो हमने ऐसा सुना है कि राजा कंस ने माता यशोदा की कन्या

पर, जो भगवान् कृष्णा के स्थान पर लाई गई थी, उसको नष्ट किया तो उसकी विद्युत बन करके, मेघों में चली गई थी और मेघों में चले जाने से राजा कंस भयभीत हुआ क्योंकि उसने आकाशवाणी से कहा था कि मैं तेरे विनाश के लिए उत्पन्न हो गई हूँ और यह वह विद्युत है जिसमें कंस के परिवार का कुछ अंकुर होता है उसी पर उसका प्रहार हो जाता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु आपने विद्युत को जल से कहा है इसका भी आपके द्वारा कोई उत्तर न होगा।

41. भगवान कृष्णा का पूर्व जन्म

भगवान् कृष्णा के पूर्व जन्म का विवरण मिलता है, भगवान् कृष्णा इस जीवन से पूर्व मध्यूपान ऋषि महाराज थे। मध्यूपान ऋषि महाराज जब देवयान में विचरण करते थे तो संसार को देखा करते थे कि यहाँ क्या हो रहा है? यह कौन-सी प्रगति को जा रहा था और राजा कंस के अत्याचारों से महापाप छा रहा था उस काल में मध्यूपान ऋषि ने माता देवकी के यहाँ आ करके उस महान् कष्ट यात्रा में माता के गर्भस्थल में धारण होकर माता यशोदा के गृह में पहुँचे। और संसार में आ करके संसार को ऊँचा बनाया और अर्जुन से कहा कि मैं सब प्रकृति को जानता हूँ परन्तु मैं उस कर्म को नहीं करूंगा जिस कर्म के करने से यह संसार तुच्छ बन जाए, मुझे तो वह कर्म करना है, जिससे यह संसार ऊँचा बने। तो उसका नाम देवयान है जहाँ संसार को देखा जाता है।

महाराजा कृष्णा की एक वार्त्ता मेरे कण्ठ आ गई। भगवान कृष्णा ने महारानी रुक्मिणी से यज्ञ के सम्बन्ध में क्या शब्दार्थ कहे? मैं संसार की पौथी को लकर चलता हूँ तो विचार आता है कि यज्ञ मनुष्य का क्या से क्या कर देता है। भगवान् कृष्णा से महारानी रुक्मिणी ने एक समय प्रश्न किया कि यह जो तो आप यज्ञ करते हैं यह क्यों करते हैं? इससे आपको क्या लाभ है? भगवान कृष्णा ने कहा हे देवी! मैं जो इस यज्ञ को कर रहा हूँ मैं चाहता हूँ कि मेरा मिलान परमात्मा से हो जाये। मेरी जो आन्तरिक भावना है, आन्तरिक जो तरंगें हैं, वह परमात्मा से प्रेरित हो। परमात्मा से सहायता लेकर संसार का कार्य त्याग पूर्वक करता चला जाऊं। यह जो यज्ञशाला है, यह त्याग की भावना देती है। मुझे यज्ञशाला

में विराजमान हो करके कैसा त्याग मिलता है? जब होता और यज्ञमान धृत आदि अग्नि में त्यागते हैं तो उन्हें ज्ञात नहीं कि तूने जो त्याग किया है इसका फल क्या होगा। हे देवी? आज मैं यज्ञ कर रहा हूँ परन्तु त्याग भावना से। हमने घृत, सामग्री आदि की जो भी आहूति दी अग्नि उन सबका त्याग कर देती है और उन्हें अन्तरिक्ष में रमण करा देती है। उसको देवता ग्रहण करते हैं। देवता उसको पान करके हमारे लिए सुख की वृष्टि करते हैं।

भगवान् कृष्ण की चर्चाएं स्मरण आती हैं तो विचार आता है कि भगवान् कृष्ण कितने पवित्र कहलाते थे।

42. गोपिकाएं

महानन्द जी ने एक समय प्रश्न किया कि आधुनिक काल का संसार यह कहता है कि भगवान् कृष्ण की सोलह हजार गोपिकाएं थीं, संसार ने महाराज कृष्ण को जाना नहीं, मुझे भगवान् कृष्ण के जीवन को देखने का सौभाग्य मिला और हम गौरव के सहित कहा करते हैं कि भगवान कृष्ण पर्जन्य ब्रह्मचारी कहलाते थे और सोलह हजार वेद की ऋचायें उनके कण्ठ थीं और हर समय उन ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे, उनकी पत्नी रूक्मिणी उनसे कहा करती थी कि प्रभु! आप तो हर समय इन वेद रूपों गोपिकाओं में रमण करते रहते हैं तो उस समय भगवान कृष्ण कहा करते थे कि हे देवी! परमात्मा ने इस वेद रूपी अमूल्य प्रकाश को जानने के लिए मुझे उत्पन्न किया है, आज इस प्रकाश को जानना है जिसको जानकर मानव मुग्ध हो जाता है और उसके द्वारा वेद की भावनाएं उत्पन्न होकर संसार सागर से पार हो जाता है। वेद के सम्बन्ध में, वेद नाम प्रकाश का है।

43. भगवान कृष्ण से एक समय महारानी रूक्मिणी ने कहा कि प्रभु! गौ हम किसको कहते हैं?

भगवान् कृष्ण ने कहा था हे देवी। गौ नाम हमारी इन्द्रियों का है, दुग्ध देने वाला जो पशु है उसका नाम भी गौ है, गौ नाम सूर्य की किरणों का है, चन्द्रमा की कान्ति का नाम भी

गौ है और गौ नाम पृथ्वी का है। भगवान कृष्ण ने गौ को नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों से विभक्त किया है। गौ शब्द की व्याख्या करते हुए हमारे आचार्य जनों ने कहा है कि जब सूर्य से अमूल्य किरणें चलती हैं और संसार में इनका विकास होता है तो एक-एक किरण से नाना प्रकार की किरणों की उदबुद्धता हो जाती है, जिस समय वह संसार में ओत-प्रोत होती हैं तो प्रत्येक मानव उन किरणों से अपने जीवन को बनाता है, यौगिकता को प्राप्त हो जाता है। आज वह इन्द्र सहस्त्रों भुज वाला बनकर हमारा कल्याण और हमारी रक्षा कर रहा है।

घटोत्कच बड़े वैज्ञानिक थे। अर्जुन के पुत्र वभ्रुवाहन इतने बड़े वैज्ञानिक थे कि उन्होंने एक ऐसे यन्त्र का विकास किया जो संसार का क्य 18 अक्षोहिणी सेना को समाप्त कर, वह यन्त्र उनके द्वार आ जाये। वभुरभान ने भगवान कृष्ण से प्रश्न किया कि भगवन्! मुझे परमात्मा में विश्वास नहीं होता और वह इसलिये नहीं होता क्योंकि मैंने विज्ञान को जाना है और अब मैं इस प्रयत्न में लगा हुआ हूँ जिससे यन्त्रों द्वारा, मैं अन्तरिक्ष के ग्रहों को जान सकूं। उस समय भगवान् कृष्ण ने एक वाक्य कहा था कि भाई, इनको भी जानो और आत्मा को भी जानो। हे बभ्रुवाहन! संसार में एक को जानने से संसार जाना जाता है और एक को न जानने से किञ्चित जाना जाता है। सूक्ष्म जाना जाता हे। जैसे वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र बनाया है, अणु महाअणु बनाये और यह यन्त्र बनाये, जिनसे लोकों में रमण कर सकते हैं परन्तु वह है भौतिक विज्ञान। परन्तु जब हम उस आत्मिक और परा विज्ञान का जानते हैं परा विज्ञान को कैसे जानते हैं? कि वह जो मन चंचल है इसको हम शान्त करते हैं, बुद्धि से कार्य करते हैं, बुद्धि से आगे मेघावी बुद्धि से जो अन्तरिक्ष में रमण करने वाले वाक्य हैं, नाना प्रकार के भावों को जाना जाता है। मेघावी बुद्धि से ऋतम्भरा बुद्धि से जो अन्तरिक्ष से ऊपर चली जाती हे, आगे प्रज्ञा बुद्धि जहाँ हम परमात्मा से मिलान करते हैं जिस परमात्मा ने इस संसार में भौतिकवाद को रचाया है इस प्रकृति को चेतना दी है जिसको अपने अधीन करके हम शासक कहलाते हैं, परमात्मा रक्षक होता है और प्रकृति के अणु अणु को जान लेते हैं, कि कौन सी धातु इस प्रकृति में और कौन-कौन सी धातु इस चन्द्रमा और सूर्य में है, इन सबको जानकर हम पूर्ण वैज्ञानिक बन जाते हैं दोनों

प्रकार के विज्ञान को जानना है, इन्हीं विचारों पर अनुसन्धान चलता था और अनुसन्धान चलता चलता परमात्मा तक पहुंच जाता था, इस प्रकार हम अपने इस भौतिकवाद और आत्मिकवाद को परमार्थ बनाते हुए परमात्मा के विश्वासी बनते हुए संसार के सब पदार्थों को जान सकते हैं।

44. गौ सेवा

मुझे महाराजा कृष्ण का जीवन स्मरण है। कितना व्यापक था। उनका व्यापकता से वह संसार को दृष्टिपात करते थे। उनका जीवन, उनकी मानवीयता कितनी व्यापकता में गऊओं के आँगन में रमण कर रहे हैं, गऊओं का पालन कर रहे हैं, ध्वनि आ रहे हैं तो गऊएं उनके आँगन को चली आ रही हैं। उस मानव के हृदय में कितनी उदारता होती है जिनसे पशु-पत्ती भी स्नेह करते हैं। मानव कितनी स्नेहधारी होती हैं इसलिए हे मानव! यदि चाहते हो कि संसार तुमसे प्रीति करे तो तुम स्वयं अपने अन्तर आत्मा से प्रीति करो। संसार तुम्हें स्वतः अपना लेगा। यदि तुम अपनी अन्तर आत्मा से द्रोह करोगे, मान अपमान के क्षेत्र में रमण करते रहोगे तो हे मानव! क्या होगा? एक समय वह आयेगा कि जो तुम्हारा बाह्य कर्म है वह सब नष्ट हो जाएगा! यदि तुम इस आत्मा को जानने का प्रयत्न करोगे, आत्मा को भोजन दोगे, सत्संग में आत्मा को बलिष्ट करोगे तो तुम्हारा हृदय, मन बलिष्ठ होगा और यह संसार स्वतः अपनाता चला जायेगा। जहाँ तक कि मृगराज भी उस प्राणी को अपनाते हैं वह मृतमण्डल से सूर्यमण्डलों में चला जाता है। लोक लोकान्तरों को दृष्टिपात करने लगता है। तो आज हम अपनी आत्मा को प्रीति देने का प्रयत्न करें। हमारी अन्तर आत्मा विचित्र होनी चाहिए। हमारे अन्तर आत्मा में शक्ति होनी चाहिए। हमारा अन्तर आत्मा ही हमारे जीवन का प्रेरक है। आज हम संसार को विचित्रता में लाना चाहते हैं मानवीयमयी और करूणामयी आत्मा में अपने आनन्द को लेते चले जायें। आत्मा को भोजन देने का प्रयत्न करे।? भगवान् कृष्ण एक समय गोपिकाओं में विनोद करते रहते थे। और विनोद करते-करते, उन्हें कई दिवस हो गये। महारानी रूक्मणी आयी प्रभु! यह आप क्या कर रहे हैं? आप इन गोपिकाओं में विनोद करते रहते हैं आपको राष्ट्र का ध्यान

नहीं? भगवान श्रीकृष्णा कहा करते, हे देवी! यह संसार तो चलता चला जा रहा है और चलता चला जायेगा। परन्तु तुम गोपियोओं में विनोद करने दो। मुझे आनन्द आता है जब मैं इनसे विनोद करता हूं तो मेरे अन्तरात्मा शक्ति को प्राप्त कर लेता है। भगवान श्रीकृष्णा जब यह कहा करते तो रूक्मिणी मौन हो जाती। कोई उत्तर नहीं बनता कहा करती, भगवन! भोजन इत्यादि पान करो। परन्तु उसका भी समय प्राप्त नहीं होता था। तो प्रत्येक मानव को गोपियों से विनोद करना चाहिए। गोपिकाएं क्या हैं? अरे मानव के द्वारा जो संकल्प विकल्प होते हैं उनका नाम गोपनीय विषय कहा जाता है। जब हम उस गोपनीय विषय को विचारते हैं उनका मंथन करते रहते हैं तो एक समय में देवता बनने की हमारे द्वारा प्रवृति आई तो देवता बन गये और एक क्षण समय आया तो हम असुर बन गये अब विचारना है कि हम असुर क्यों बन गए। प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या का कर्त्तव्य है। जब मानव इन पर विचार करता है कि तो गोपनीय विषय को विचारता है।

तो यह विचारने की विद्या कहाँ से आती है भगवान् श्रीकृष्णा को कहा जाता है कि उनके सोलह हजार आठ गोपिकाएं थी, पत्नियां थी। वह क्या थीं? भगवान् श्रीकृष्णा के सोलह हजार आठ वेद की ऋचाएं कंठ थीं और उनमें रमण करते रहते थे, उनका मंथन करते रहते थे, न भोजन ही स्मरणआता था न संसार स्मरण आता था, न यह राज्य और न यह संसार उनमें विनोद करते, अन्तरात्मा में चले जाते। तो जब हम इन वेद मन्त्र रूपी गोपिकाओं को विचारते हैं, अपनी प्रवृतियों को विचारते हैं तो हमारा जीवन एक नवीन बन जाता है। नवीन धारा हमारे हृदय में प्रविष्ट हो जाती है। हमारा अन्तरात्मा पवित्र हो जाती है। हम पांचों प्रकार के कर्मों को सुगमता से विचार लेते हैं। जब हम भगवान् श्रीकृष्णा के क्षेत्र में जाते हैं तो उनके जीवन में कितनी व्यापकता थी जिनसे मार्ग में विचरण करने वाले पक्षी भी करते हों। वहाँ कितनी विचित्रता, कितनी मानवता होती है। आज हम उस मानवीय क्षेत्र में पहुंचे जहाँ व्यापकता प्राप्त होती हो। जहाँ हमें ओज और तेज की प्राप्ति होती है। हम संसार में अपने जीवन को वैसे ही समाप्त न करें। प्रत्येक मानव अपने धर्म को जानना चाहता है परन्तु धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहते ही उसे हैं मन कर्म वचन से हिंसा ही मत करो। गऊ नष्ट करना ही हिंसा नहीं कहलाता। हिंसा

और अहिंसा दो वस्तु हैं। सब से प्रथम हिंसा मनुष्य वाणी से प्रारम्भ होती है। जब वाणी से कटु उच्चारण करता है, किसी का अपमान करता है, तो जानो कि वह प्राणी हिंसा करने के लिए तत्पर हो गया। किसी प्राणी को नष्ट करना भी हिंसा है परन्तु किसी की अन्तरात्मा को कटु शब्दार्थो को देकर के दुःखित बनाना भी हिंसा है। तो मानव को अपनी वाणी बहुत उच्चता से उच्चारण करनी है।

45. युद्ध शान्ति का आग्रह

द्वापर काल स्मरण है जब महाभारत के संग्राम के लिए सामग्री एकत्रित हो रही थी। महाराज युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण को कहा कि महाराज! दुर्योधन की मति प्रभु ने हर ली है कि उसके समीप जाइये और वाक्य उच्चारण कीजिए। आपके वाक्य स्वीकार करेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण उनके द्वार पर जा पहुंचे तो महाराजा दुर्योधन ने इनका बड़ा आदर किया। शांत मुद्रा में विराजमान हो गये। दुर्योधन ने कहा, कहिए भगवन्! आज आपने कैसे कष्ट किया? भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, भाई! हमारी इच्छा यह है कि तुम इस राज्य में से कुछ राज्य पाण्डवों को अर्पित कर दो। वह भी अपने जीवन की पूर्ति कर लेंगे। उस समय दुर्योधन ने कहा, भगवन्! मैं आपके वाक्य को नष्ट नहीं करना चाहता परन्तु राष्ट्र के इस प्रकार विभाजन नहीं हुआ करते हैं। जहां राष्ट्र का विभाजन हो जाता है तो वहाँ कुछ नहीं रहता। आप राष्ट्र का विभाजन न कराइये। श्रीकृष्ण ने कहा, नहीं, नहीं! हम राष्ट्र का विभाजन नहीं कराना चाहते परन्तु कुछ अर्पित कीजिए जिससे वह भी अपने जीवन की पूर्ति करते चले जाएं। दुर्योधन ने कहा कि जितने स्थान में मानव का एक केश आता है उतनी भूमि भी उन्हें प्राप्त नहीं की जायेगी।

श्रीकृष्ण ने बहुत कहा, परन्तु इस वाक्य के उच्चारण होते ही उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि अब समय आ गया यहाँ अग्नि प्रदीप्त होगी। भगवान् कृष्ण ने कहा, अच्छा दुर्योधन! जैसी तुम्हारी इच्छा, परन्तु अग्नि अवश्य प्रदीप्त होने जा रही है। दुर्योधन ने उन्हें कुछ कटु शब्द कहे। गोचर कहा, गऊ चराने वाला कहा और दुष्ट कहाँ भगवान् श्रीकृष्ण मग्न हो गये। दुर्योधन ने उनके लिए नाना प्रकार के खानपान की सामग्री एकत्रित की। परन्तु भगवान्

श्रीकृष्णा ने कहा, राजन्! मैं इस अन्न को नहीं पाऊंगा। उन्होंने कहा, क्यों? तुम्हारा अन्न, तुम्हारी भावनाओं से दूषित हो चुका है। यह अन्न मुझे भी दूषित करेगा। दुर्योधन ने बहुत कहा परन्तु भगवान कृष्णा उस भोजन को त्याग करके महात्मा विदुर के स्थान पर जा पहुंचे। जो अन्न से पीड़ित रहता था। जो मार्ग से शाक लाता और उसका भोजन बनाकर दोनों प्राणी पाते। भगवान् श्रीकृष्णा ने वह भोजन मग्न होकर के पान किया और पान करके वहाँ से चले।

तो उनके जीवन में कितनी अमूल्य धाराएं थीं, आज हमें उन धाराओं को अपनाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। मानव को अपने जीवन धारा को विचारना ही मानवता है। यदि इनको नहीं जाना, इन्हें नहीं अपनाया तो यह कोई मानवता नहीं है। हमें अपने जीवन में अपनी आत्मा को भोजन देना चाहिए। नाना प्रकार के भवनों में मानव का निर्माण नहीं होता। मानव का निर्माण होता है उसकी भावनओं से होता है। मानव का निर्माण होता है तो भयंकर वन में। भगवान श्रीराम के जीवन का निर्माण हुआ तो भयंकर वन में। भगवान श्रीकृष्णा का जीवन निर्माण हुआ तो गुरूओं के द्वारा भंयकर वन में। मानव को कहाँ जीवन मिलता है। जहाँ प्रकृति अपने श्रृंगार से सुशोभित है। जहाँ प्रकृति का श्रृंगार ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य से परिपक्व कर देता है जहाँ उनके जीवन की निधि प्राप्त होती है और जहाँ मानव से प्रकृति रूष्ट हो जाती है, प्रकृति निःश्रृंगार हो जाती है और मानव का बनाया हुआ श्रृंगार आ जाता है वहाँ मानव के निर्माण नहीं होते।

46. वायुमण्डल

जो महाभारत के काल में भगवान् कृष्णा और अर्जुन का जो संवाद था वायु मण्डल में जो विचरण कर रहा है उसको हम यन्त्रों के द्वारा लाना चाहते हैं। इस प्रकार का विज्ञान भी है। वह विज्ञान एक महान् है। क्योंकि वह वाणी पर अनुसन्धान करने से ही वायु पर अनुसन्धान करना वायु की रश्मियों को, अग्नि की रश्मियों को इन दोनों का समावेश किया जाता है। एक वैज्ञानिक यन्त्र बनाता है और वह यन्त्र बनाने से पूर्व अपना लक्ष्य है कि मैं वायुमण्डल में अन्तरिक्ष में जो शब्द भ्रमण कर रहे हैं मै। उन शब्दों को एक यन्त्र में लाना

चाहता हूँ। भौतिक विज्ञान में लाना चाहता हूँ। क्योंकि वे शब्द तो प्रकृति के गर्भ में रमण कर रहे हैं और प्रकृति के गर्भ में जो वस्तु रमण करती है प्रायः हम उसके एकत्रित कर सकते हैं। जैसे एक मानव यन्त्रों का निर्माण करता है शब्दों को ग्रहण करने के लिए। उसमें अन्तरिक्ष में जो परमाणु भ्रमण कर रहे हैं अथवा सूर्य की रश्मियां हैं और सूर्य की रश्मियों से भी एक सूक्ष्म रश्मियां होती हैं जो जेठाय नक्षत्र की रश्मियां होती हैं। उन रश्मियों को और सूर्य की किरणों के द्वारा जो रश्मियां हैं उन दोनों रश्मियां को एकाग्र करते हैं उनको एक यन्त्र में स्थिर करते हैं क्योंकि उनकी एक स्थली बनाते हैं, पृथ्वी की उसमें पुट लगा करके और उसमें से प्राण वायु और प्राण के नाश देने वाली वायु का दोनों का हम मिलान करते हैं और मिलान करने के पश्चात् वे जो रश्मियां हैं उनमें कुछ प्राणदायक हैं कुछ प्राण को दूषित बना सकती हैं वे जो व्यान-प्राण है जैसे व्यान-प्राण हमारे कण्ठ के ऊपर का भाग है इसी प्रकार जो व्यान-प्राण है जो प्रकृति में वायु मण्डल में भ्रमण कर रहा है वह शब्द के साथ होता है वह प्राण और जेठाय नक्षत्र की जो रश्मियां हैं वे प्रायः उनसे हमें प्राप्त होती हैं। अग्नि की धाराओं में उनकी धारा रमण करती है। वायु की धाराओं में मिश्रित होता हुआ वायु मण्डल के परमाणुओं को वह अपने में एकत्रित करने का प्रयास करता है। उसयन्त्र में स्वतः इस प्रकार की रश्मियां होती हैं। इस प्रकार की आकर्षण शक्ति हो जाती है कि उस यन्त्र के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने लगते हैं।

47. भगवान कृष्णा द्वारा बब्रीक परीक्षा

भगवान् कृष्णा ने कहा कि हम परीक्षा चाहते हैं। उस समय महाराज ब्रब्रीक ने ऐसा ही किया। अपने अस्त्रों का प्रहार कर दिया। और वह अस्त्र वृक्ष की पत्ती-पत्ती को छेदन करने लगा। कुछ पत्तियां भगवान् कृष्णा ने अपने पगों के नीचे कर ली थी। उस समय जब अस्त्र पत्ती-पत्ती को छेदन कर रहा था और सूक्ष्म पत्तियां रह गई तो महाराजा ब्रब्रीक ने कहा हे भगवन्! आपके पगों को छेदन करके यह मेरे समीप आ सकता है। भगवान कृष्णा ने उन पगों को दूर कर लिया। उन पत्तियों को छेदन करके वह अस्त्र महाराज ब्रबरीक के

समीप आ गया। उसी अस्त्र को हमारे यहाँ ब्रह्मास्त्र कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि महाराजा कृष्ण और अर्जुन ने यही विचारा कि इसका तो ऐसा भयंकर परिणाम हो सकता है कि यह महाभारत कुरुक्षेत्र में नहीं होने देगा। अब क्या करना चाहिए ? अर्जुन ने कहा कि इससे कुछ और जानकारी करो। महाराजा बब्रीक से बोले हे बब्रीक! जब तुम इतने क्षत्रिय हो, इतने महान वैज्ञानिक हो तो मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम दानी कितने हो। उन्होंने कहा कि प्रभु! जो आप चाहोगे वही दान मैं अर्पित करने वाला हूँ। तो उन्होंने कहा कि यह जो कंठ से ऊपर वाला भाग है इसे हमें अर्पित कर दीजिये। उन्होंने कहा कि भगवन्! यह आपसे ऐसा व्यवहार क्यों? मैंने आपको जान लिया है आप तो कृष्ण हैं। आप ही इस महाभारत के रचयिता हैं। इसलिए आपको मैं यह दान दे रहा हूँ। आप मेरे कंठ से ऊपर वाले भाग को अर्पित कर लीजिये। उन्होंने कहा कि नहीं हम आपके शरीर से दूर नहीं चाहते हैं। आप इस संग्राम को दृष्टिपात करो परन्तु आप भुजाओं से अस्त्रों और शस्त्रों से कार्य नहीं कर पाओगे। उन्होंने कहा कि भगवन्! यह मुझे स्वीकार है।

48. कृष्ण द्रौपदी संवाद

एक समय भगवान् कृष्ण ने भयंकर वनों में याग करते हुए द्रौपदी से कहा कि हे देवी! जहाँ वेदों में तुम रमण करती रहती हो, जहाँ सदैव भयंकर वनों में यागों की प्रतिभा चलती रहती है तो याग का स्रोत क्या है? याग किसे कहते हैं? उस समय द्रौपदी ने कहा कि महाराजा आप इतने महान् हैं और आप मुझसे प्रश्न कर रहे हैं। क्या मेरी परीक्षा ले रहे हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, देवी! मैं तुम्हारी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। परन्तु मेरा तो प्रश्न है। उस समय द्रौपदी ने कहा कि याग का अभिप्राय है कि हम हवि देते हैं और किसे हवि देते हैं, हवि हम देवताओं को प्रदान करते हैं। देवता वह वस्तु त्यागते हैं हमारे लिये जिससे अन्न की वृद्धि के लिए वृष्टि करते हैं। याग से पर्जन्य होता है उसी पर्जन्य से वृष्टि होती है, उसी वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है। उसी को हम पान करते हैं, हमारे जीवन का संचार होता है। हे भगवन्! आप तो सर्व जानते हैं इसको देव पूजा कहते हैं। देव पूजा का अभिप्राय यह कि देवताओं में जो गुण हैं ऐसे ही गुणों को हमें धारण करना

चाहिये। जैसे अग्नि है वह प्रदीप्त रहती है, जब तक वह प्रदीप्त रहती है तो चाहे कोई मृगराज हो कोई प्राणी हो अग्नि के समीप नहीं आ पाता। इसीलिए मानव को काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह से इतना दूर रहना चाहिये, ज्ञान रूपी अग्नि का इतना संचार हृदय में रहना चाहिये जिससे काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह इस मानव के ज्ञान रूपी अग्नि के समीप न आ सकें। जैसे मृगराज अग्नि के समीप नहीं आते, नाना प्राणी नहीं आते, इसी प्रकार मानव के हृदय में इतनी अग्नि प्रदीप्त रहनी चाहिये।

पति पत्नी द्वारा याग

भगवान् कृष्णा जब प्रातःकाल में यज्ञ करते रहते थे। पत्नी और वे दोनों यज्ञ करते रहते थे। हमारा कर्त्तव्य है यज्ञ में जाना हमारा देवत्व पूजन है; यह देव पूजा है। हमें अग्नि को सुगन्धित देना है, हम जितना लेते हैं दुर्गन्धि के बदले, सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बन करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएं, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो, जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊँचा बने। ये पांच प्रकार की आभाएं कहलाई जाती हैं।

49. सम्वतसर

भगवान कृष्णा ने अर्जुन को बृहद-रूप का वर्णन कराया था। इन्हीं रूपों में वृहद्, जब छः दिशा प्रतीत होने लगीं तो उसी में अग्नि व्याप्त हो रही है, उसी में अमृत गण विद्यमान है, उसी में संवतसर विद्यमान हो रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसमें दृष्टिपात हो जाता है। तो इसी से मानव का विराट-स्वरूप है। इस विराट-स्वरूप को भी जानना चाहिए।

एक समय भगवान् एक समय वह एक यन्त्र का निर्माण अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो परमाणुओं में अशुद्धवाद होता है इसके निवारण के लिए आप क्या कर सकते हैं? भगवान् कृष्णा ने कहा हे अर्जुन! यदि परमाणुओं का दुष्प्रहार होने लगेगा तो मैं उसके पश्चात याग करूंगा। नाना साकल्य एकत्रित करके घृत एक ऐसी वस्तु है जिसे हम पशु याग कहते हैं। पशु याग क्यों कहते हैं? क्योंकि पशु से घृत आता है और उस घृत के द्वारा जो याग करते हैं अग्निष्टोम, अग्नि में उसको वह प्रवेश करते हैं

वह परमाणुवाद को उत्पन्न करते हैं और सूक्ष्म बनाता हुआ वायुमण्डल में प्रवेश करके अशुद्धता को निगलते चले जाते हैं उनका सम्बन्ध द्यौ लोक से रहता है। तो याग कर्म जहाँ इस प्रकार का ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाला है, हे यज्ञमान! तेरे आहार और व्यवहार की सामग्री भी उसके अनुसार होनी चाहिए। यदि तेरे आहार और व्यवहार में अशुद्धवाद आ गया तो याग की परम्परा, याग की जो धारा है वह तेरे आत्मायता की जो शान्ति है उसे निगलती चली जाएगी और तेरे हृदय में एक ही उज्ज्वल अग्नि प्रदीप्त हो सकती है। वह तेरे हृदय को अपने में धारण करती तेरे हृदय को अशान्त बनाने का मूल कारण बन सकती है।

50. भगवान कृष्णा का गुरु संदीपन महाराज से मुद्रिका पर संवाद

मुझे स्मरण आता रहता है भगवान कृष्णा का जीवन। जब भगवान कृष्णा तपस्या करते थे, क्योंकि जहाँ वह राष्ट्र के विषय में जानते थे, जहाँ वे दर्शनों के गम्भीर रहस्यों में गमन करते थे, वहीं वे विज्ञान की प्रतिभा को भी जानते थे।

मुझे उनका जीवन स्मरण आता रहता है जब वह तपस्या में सदैव प्रवेश करते थे तो अपने जीवन को पंचीकरण बना लेते थे। पंचीकरण का अभिप्रायः यह है कि मानव के हस्तों में पंचीकरण, की आभा होती रहती थी। उसी का निर्णय करते रहते हैं। पृथ्वी, अग्नि, आकाश, जल और वायु, ये अपने में गति करते रहते हैं। एक ही धुन में तीनों ही में रमण करते रहते हैं। अग्नि और पृथ्वी तत्त्व का मिलान करना हो तो अग्नि तत्त्व को मिलान करने से मानव के शरीर में जो पार्थिव तत्त्व हैं, जिसे हम चित्त का मण्डल भी कहते हैं, अग्नि उसको तेजोमयी बनाती रहती है। उन दोनों के मिलान करने से मानव के शरीर में अग्नि और पार्थिव तत्त्वों का जब समन्वय होता है, तो मन की स्थिति स्थिर होने लगती है जब वह स्थिर होने लगती है तो उन्होंने इस सम्बन्ध में एक समय जब यह भयंकर वन में समुद्र के तट पर वह तपस्या करने चले गए, तो अपने में पंचीकरण को लाने का प्रयास किया, जिसे हमारे यहाँ एक मुद्रिका कहते हैं। इस मुद्रिका का सिद्धान्त परम्परागतों

से हमारे ऋषि- के सिद्धान्त में भी आता रहा है और विद्यालय में भी इस सिद्धान्त को प्रायः अध्ययन कराते रहते थे।

तो मुझे स्मरण आता रहता है जब यहाँ महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का कार्य कलाप होता रहा, तो ब्रह्मचारियों को अध्ययन में मुद्रिका का वर्णन कराते। हमारे यहाँ विद्यालयों में जब तक मुद्रिका वाला आचार्य नहीं होता, तो ब्रह्मचारियों को हम ब्रह्मवर्चोसि नहीं बना सकते। क्यांकि मुद्रिका का अभिप्रायः यह है। कि हमारा मन सूर्य विज्ञान के ऊपर अध्ययन करना चाहता है। जब सूर्य विज्ञान के ऊपर अध्ययन करना चाहता है तो उस अग्नि को और वायु को, दोनों को मिलान करते हुए, अंगुष्ठान से उनका मिलान करते हुए गोलाकार बनाते हुए अपने मन को वहाँ स्थिर कर लेता है। जब वह स्थिर करता हुआ सूर्य विज्ञान, सूर्य में जो प्रतिभा है उसका समन्वय हमारे अन्तरात्मा, हमारे हृदय से होता है, तो वह जो हृदय है हृदय में सूर्य की किरणों से जो-जो द्यौ मण्डल में तत्त्व विद्यमान होते हैं उनका साक्षात् होना स्वाभाविक बन जाता है।

मुझे स्मरण आता रहता है भगवान कृष्णा का वह बाल्यकाल, जिस काल में वह संदीपन ऋषि के यहाँ अध्ययन करते रहते थे और संदीपन ऋषि महाराज अध्ययन कराते रहते थे तो एक समय गुरु के चरणों में ओत-प्रोत हो करके यह अध्ययन करने लगे कि महाराज! मैंने कुछ वेदमन्त्रों का अध्ययन किया है, मुद्रो भवा सम्भवा देवतम अग्नि वर्णा प्रह्वा प्रसुति चित्रं रथा भगवान कृष्णा ने बाल्यकाल में यह वाक् कहा कि महाराज यह वेद मन्त्र कहता है हम इस वेद मन्त्र के आधार पर कुछ जानना चाहता हूँ क्योंकि आप ऋषिवर हैं आप ने बहुत अध्ययन किया है उस अध्ययन के आधार पर मैं आपके चरणों में विद्यमान हूँ। तो ऋषि ने कहा, हे ब्रह्मचारी! यह तुम्हारा प्रश्न बड़ा गम्भीर है, बड़ा अद्वितीय है। उन्होंने कहा, महाराज! इसका मुझे निर्णय कराइए। तो उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर कहा हे कृष्णा! यह जो तुम उच्चारण कर रहे थे सर्वो ब्रह्मेः अग्निं वरुणां चित्र अग्रते देवः यह जो वेदमन्त्र की कुछ आख्यायिकां हैं। जिनका विचार मैं तुम्हें नित्यप्रति याग के समय इस वेदमन्त्र का परिचय देता रहता हूँ और वेदमन्त्र यह कहता है कि जिस-जिस मानव के मन की विकृतता शान्त नहीं होती, वह मानव ब्रह्मवर्चोसि नहीं बन सकता और तुम्हें ब्रह्मवर्चोसि

बनना है और ब्रह्मवर्चोसि बन करके तुम्हें अपनी मुद्रिका को जानना है।
तो भगवान कृष्ण वायु और पृथ्वी दोनों के मिलान को क्रियात्मक जानना चाहते थे। तो संदीपन ऋषि महाराज ब्रह्मचारी को अपने हृदय में हर्षता का परिचय करते हुए वेदमन्त्र का परिचय देने लगे। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! आओ, विराजो! तुम साधना के क्षेत्र में जाना चाहते हो या विज्ञान के क्षेत्र में जाना चाहते हो? कृष्ण जी ने कहा कि महाराज! मैं तो दोनों ही क्षेत्रों में जाना चाहता हूँ, मैं यौगिक क्षेत्रों में भी प्रवेश करूंगा और विज्ञान के क्षेत्र में भी मेरा अनुसन्धान चलना चाहिए। उन्होंने कहा, कि यदि तुम इस विज्ञान में जाना चाहते हो, भौतिकवाद में प्रवेश करना चाहते हो तो तुम अपनी मुद्रिका को जानो। मुद्रिका क्या है? बाह्य जगत् और अपने आन्तरिक जगत् दोनों के ऊपर तुम्हें अध्ययन करना है। वह अध्ययन कैसे करना है? एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके तुम अपनी गम्भीर मुद्रा बना लो। परन्तु गम्भीर मुद्रा कैसे बनाओगे? जब तक बाह्य जगत् का समन्वय आन्तरिक जगत् से नहीं होगा, जब तक तुम गहरी मुद्रा में प्रवेश नहीं करोगे। मुझे स्मरण है वेदमन्त्रों के ऊपर अध्ययन करने वाला ऋषि हृदय से योगी होना चाहिए और योगी प्राण को संग्रह करता हुआ अग्नि को संग्रह करता हुआ पार्थिव तत्त्व का चित्त के तत्व से उसका समन्वय होना चाहिए। जब वह चित्त के मण्डल को अपना समन्वय करता है तो अग्नि का और चित्त के मण्डल दोनों का समन्वय हो करके दोनों प्रकार के विज्ञान में वह दोनों पारायण बनता है। सबसे प्रथम वह भौतिक विज्ञान, जिस भौतिक विज्ञान के ऊपर, मानव अपना अनुसन्धान करता रहता है। कहीं वह गम्भीर मुद्रा में चला जाता है, कहीं वह बाह्य जगत् में प्रवेश करता हुआ कही वह सूर्य मण्डल की किरणों में चला जाता है, कहीं पार्थिव तत्त्व के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करने लगता है। तो जो तुम्हारी जो अध्ययन करने की प्रवृत्ति है वह तुम्हारी विशाल उस काल में बनेगी जब तुम अपने हृदय अगम ज्योति में अपनी अणिमा के द्वारा अपनी साधारण कृतियों में मुद्रा बनाओगे।
तो उन्होंने कहा, प्रभु! मैं मुद्रा को जानना चाहता हूँ, मुद्रा किसे कहते हैं? उन्होंने कहा, जैसे हमारे इस हस्त में पांच अंगुष्ठान कहलाते हैं। प्रत्येक अंगुष्ठान का सम्बन्ध पांचो तत्त्वों से रहता है, अंगुष्ठान सबसे प्रथम अंगुष्ठान का सम्बन्ध पृथ्वी से होता है। द्वितीय का अग्नि से

होता है, तृतीय का अन्तरिक्ष से होता है, चतुर्थ का आपो से रहता है, और पंचम का वायु से रहता है। इसी प्रकार जो मानव अपने को विजय करना चाहता है तो पाचों जो अंगुष्ठान हैं उनके ऊपर उनका अध्ययन होना चाहिए और क्रियात्मक होना चाहिए। क्रियात्मक कैसे बनता है? शान्त मुद्रा में विद्यमान है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके अन्धकार से अपने जीवन को प्रकाश में लाना चाहता है अपने जीवन को प्रकाश में लाने के लिए वह वह अंगुष्ठान और अग्नि तत्त्वों का मिलान करना चाहता है, क्योंकि पृथ्वी के तत्त्व में तो चित्त रहता है और अग्नि के गर्भ में प्रकाश रहता है जिसका द्यौ से और प्राण से समन्वय होता हुआ उनको एकाग्र करने के लिए क्योंकि यह सब मन का मण्डल कहलाता है। और मन का मण्डल प्राण की गति के द्वारा उसका समन्वय संग्रहित किया जाता है।

तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण है दोनों गुरु और शिष्य विचार-विनिमय करते रहते थे वह रात्रि के अन्तिम काल में वह मुद्रिका बनाते थे। अपनी मुद्रिका बना करके मन को उस मुद्रिका पर लगा देना, हृदय से उसका समन्वय हो जाता था। और मानव का जो हृदय है वह संसार के ज्ञान और विज्ञान की एक पूंजी माना गया है। क्योंकि हृदय से ही मानव स्नेह करता है, हृदय से ही मानव पंचीकरण को जानता है, हृदय से ही मानव अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ता है, हृदय से ही मानव नाना प्रकार के परमाणुवाद को जान करके अपने यन्त्रों में यन्त्रित हो जाता है। हृदय ही अगम्य ज्योति को जान करके, ऋषि मुनि अन्तर्मुखी हो करके वेद की पोथी को, वेद के मन्त्र के गम्भीर रहस्यों को जान करके उसको बाह्य जगत् में प्रवेश करते रहते हैं। तो भगवान कृष्ण सदैव अपने जीवन को प्रकाश में लाना ब्रह्मवर्चोसि बन करके ब्रह्मचर्य की आभा में, प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जान करके और पांचों अंगुष्ठानों का समन्वय उनके साकल्य बना करके हृदय रूपी यज्ञशाला में अगम्य ज्योति बना करके ज्ञान रूपी अग्नि को प्रचण्ड करके इस बाह्य जगत् के साकल्य को ला करके उसमें स्वाहा कर रहा है, आहुति दे करके हृदय को परमात्मा के हृदय से मिलान मिलाना चाहता है।

तो भगवान कृष्ण का जीवन ऋषि के आश्रम में पनप रहा था, आनन्दित हो करके पनप रहा था। भक्त सुदामा उनके मित्र थे। सुदामा के साथ भी उनका विचार-विनिमय होता

रहता था। सुदामा भी क्योंकि वह भी दार्शनिक और तत्ववेत्ता के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करते रहते थे। परन्तु कृष्णा में यह विशेषता रही है कि जो ऋषि ने एक समय में विवेचना दी है, उस विवेचना को वह स्मरण कर लेते थे और स्मरण करके उसी का अनुष्ठान करते हुए उसे बाह्य जगत् में प्रसारित करते थे और बाह्य जगत् से प्रसारित करके उसे समेट करके वह आन्तरिक जगत् में ले जाते थे। आन्तरिक जगत् में ले जा करके वह उसको मुद्रित रूप में बनाते थे। तो भगवान कृष्णा ने भी इस जल तत्त्व को जानते हुए मुद्रिका के गहरे समुद्र में चले गए। गहरे समुद्र में जा करके उन्हें एक बिन्दु प्राप्त हुआ। अगाध समुद्रों में जा करके एक वेद का मन्त्र उन्हें स्मरण आया और वह वेद का मन्त्र कहता था, सम्भविता अग्नि वो भवा अस्वानं ब्रह्मे वाचनमं प्रहे व्रता देवाः जो ज्ञान और विज्ञान इस वेद मन्त्र के गर्भ में विद्यमान था, उन्होंने जानने का प्रयास किया।

तो भगवान कृष्णा ने संदीपन ऋषि से कहा, हे प्रभु! यह वेदमन्त्रों में ध्यानावस्था में, मुद्रा में प्रवेश कर गया। हृदय अगम्य ज्योति में प्रवेश करता हुआ मैंने परमात्मा के हृदय अगम्य ज्योति से जब मिलान किया तो प्रभु! मुझे कुछ ऐसा भान हुआ है कि मानव का जो लघु मस्तिष्क है इस लघु मस्तिष्क में इस प्रकृति का सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत हो रहा है जैसे परमात्मा का जगत् यह ब्रह्माण्ड के रूप में है, नाना प्रकार के आभाओं के रूप में गतियाँ कर रहा है, तो इसी प्रकार प्रभु ने अपना दायित्व एक-दूसरे को प्रदान किया है पृथ्वी ने कही गऊ माता के रूप में ममता का उद्धृत दिया है, कहीं नाना प्रकार के रूपों में परिणत करने से निर्माता को माता का दायित्व दिया है।

यह बड़ा विचित्र है, इसके ऊपर अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि परमात्मा के जगत् को जानने से, परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को जानने से, यह प्रतीत होता है कि यह जो ब्रह्माण्ड है, यह गति कर रहा है, गतिशील है वह जो गति है, वह चेतना है, वह ममता के रूप में विद्यमान हैं तो आभामयी वाक् दोनों में गुरु शिष्य परम्परा के आधार पर, विचार-विनिमय होता रहता था, तो एक समय भगवान कृष्णा ने यह कहा कि महाराज मैं चित्त के मण्डल के ऊपर अपना अध्ययन करना चाहता हूँ। उन्होंने अग्नि और पृथ्वी की दोनों की मुद्रिका बनाई। मुद्रिका बना करके भगवान कृष्णा अन्तर्मुखी बन गए। अन्तर्मुखी

बन करके यह भगवान कृष्णा से बीस वर्ष का काल जब समाप्त हुआ था उस काल में यह मुद्रिका उन्होंने बनाई। और यह मुद्रिका बना करके बीस वर्ष के ब्रह्मचारी ने अन्तर्मुखी हो जाना, बाह्य जगत् में आना, शिशु विज्ञान को जानना और बाह्य जगत्, आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करते हुए आचार्य के चरणों में सदैव वेदमन्त्रों के ऊपर अध्ययन होता रहता था। तो संदीपन ऋषि महाराज ने एक समय ब्रह्मचारी को एक वेदमन्त्र का अनुष्ठान कराया। उन्होंने कहा इसको लगभग बारह दिवस तक तुम अनुष्ठान करो। अनुष्ठान का अभिप्रायः यह है कि उस वेदमन्त्र को लेकर के अध्ययन करना। उसके एक-एक शब्द के ऊपर, उसके ज्ञान और विज्ञान के ऊपर अध्ययन करना और अध्ययन करके उसके स्वरूप का वर्णन करना यह जब उन्होंने वर्णाः प्रहे जब उन्होंने आज्ञा दी तो वेदमन्त्र के ऊपर बारह दिवस तक अध्ययन करने लगे। जब अध्ययन करने लगे तो वेदमन्त्र क्या था? वेदमन्त्र था विष्णु चक्रां भवाः सम्भवेति देवं ब्रहाः शम्भु अप्रणां भूता ब्रहा वेद का वाक् यह कह रहा था कि तुम इसके ऊपर अध्ययन करो। भगवान कृष्णा ने बारह दिवस तक एकान्त मुद्रिका बना करके अन्तर्मुखी बन गए। अन्तर्मुखी बन गए ऋषि संदीपन उन्हें कुछ औषधियों का पंचांग बना करके, ग्योगोडि, कृलवांचनी, सम्भूनिका, सर्पकेतु, औषधियों को वह तपा करके रस बना करके भगवान कृष्णा को प्रातःकाल प्रदान कराते थे। वह बारह वर्षो तक तक अनुसन्धान किया, तो उसमें जितने भी यह नाना प्राणी हैं जैसे सर्प है, सुदुकेतु है, जैसे सिंह है, जैसे मृग है और गौ अस्वानी है यह कुछ पशु होते हैं जो वनचर हैं, उनकी भाषा को, उनका क्रिया-कलाप उनका आमोद-प्रमोद सर्वत्र इस वेदमन्त्र में वह विज्ञान विराजमान था। तो उसके विज्ञान को भगवान कृष्णा ने अध्ययन किया।

51. भगवान कृष्णा का ऋषि संदीपन के आश्रम में अध्ययन करते हुए ब्रह्मवर्चोसि बनना

भगवान कृष्णा और महात्मा संदीपन ऋषि महाराज स्वर विज्ञान के ऊपर अपनी कुछ टिप्पणीयाँ देने लगे। तो महात्मा संदीपन ऋषि ने, हे कृष्णा! आओ, जैसे तुम मेरे आँगन में विराजमान हो करके अपनी प्रत्येक ध्वनि को स्वीकार करो। उन्होंने अपने चरणों में

विद्यमान करा करके, नाना प्रकार की मुद्रिका के सम्बन्ध में अपना विचार दिया, हस्त की उंगलियाँ में कुछ ध्वनियाँ होती रहती हैं उनकी यह जो कृतियाँ हैं, उनके ऊपर उनका विचार, उनका भाषाएं, भाषाओं का उद्गम होता रहता है। एक मानव अपने ही एक अनुगुष्ठान से सर्वत्र अपनी भाषा का प्रतिपादन कर देता है, उसमें अक्षरों की प्रतिभा है, उसमें व्यंजन हैं, उसी में प्रति अग्रह कहलाया जाता है।

भगवान कृष्णा उनके चरणों में विद्यमान हो करके उन मुद्राओं के सम्बन्ध में जानते थे कहीं उन्होंने अग्नि तत्त्व को प्रधान माना है, किसी ने आकाश-तत्त्व को प्रधान माना है, अन्तरिक्ष और किसी में जल और वायु का समन्वय किया है और पार्थिवता से इसका समन्वय करते हुए उसमें नाना प्रकार के स्वरों की आभा का जन्म होता हैं मिलान करने से शब्दों की धाराओं का जन्म होने लगता है। तो भगवान कृष्णा नाना आचार्या से नाना प्रकार के प्रश्न किया करते थे। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो बाह्य जगत् है ब्रह्माण्ड एक स्वरूप बना हुआ है, यह ब्रह्म का अनुपम जगत् है, इसको ब्रह्माण्ड कहते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो ब्रह्माण्ड गति कर रहा है यह स्वरों से कर रहा है या व्यंजनों से कर रहा है?

तो उस समय महात्मा संदीपन ने कहा कि जो भी गतियाँ हो रही हैं वह नाना प्रकार के व्यंजनों में हैं, स्वरों में हैं और अपनी-अपनी आभा में आभायित होने वाली प्रतिक्रिया चल रही है। तुम्हें यह प्रतीत है मैंने कई काल में तुम्हें यह प्रगट करते हुए कहा था कि यह जो ब्रह्माण्ड है इसमें पांच प्रकार की प्रतिक्रियाएं सबसे प्रथम प्रसारण है उसके पश्चात् इसी में गति है गति के पश्चात् इसी में ध्रुवा है, ध्रुवा के पश्चात् इसी में ऊर्ध्वा है और इसी में आकु्चन शक्ति विद्यमान रहती है। जितना संसार का सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल का जितना भी विज्ञान है वह सर्वत्र विज्ञान इन पांचों प्रकृति की गतियों से दृष्टिपात हो रहा है। जितना भी विज्ञान आज हमें दृष्टिपात आ रहा है, जितना भी भौतिक विज्ञान है यह प्रसारण में हैं वही ध्रुवा में है, यही गति में है और यही ऊर्ध्वा में होता हुआ आकु्चन में सिमट जाता है। इस प्रकार का विज्ञान काण्ड है। विज्ञान की जो प्रतिभा है वह पांचों प्रकार की आभाओं में गति कर रहा है। भगवान कृष्णा के हृदय

में एक संकल्प जागा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या इन पांचों गतियों का इस अन्तरात्मा से क्या समन्वय होता रहता है और इस ब्रह्माण्ड का तो मैंने जान लिया है कि इस ब्रह्माण्ड से कृत्तियाँ है परन्तु आत्मा से क्या सम्बन्ध है इसका?

तो महात्मा संदीपन ऋषि ने प्रातः कालीन कहा, ब्रह्मचारियों के मध्य में उन्होंने कहा हे कृष्णा! यह जो अग्रताः सम्भवाः देवम् ब्रह्मा यह जो मैंने तुम्हें जो पांचों प्रकार की, ब्रह्माण्ड की आभा का वर्णन किया है। इसी ब्रह्माण्ड की समन्वय इस मानव के शरीर से होता है? क्योंकि यह आत्मा का शरीर है। आत्मा का रथ है रथ से इसका समन्वय रहता है। मानव के नेत्र हैं इसमें प्रसारण-शक्ति रहती है, इसी में आकुञ्चन शक्ति है, इसी में गति है गति से नेत्र संसार का चित्र ले लेते हैं। जिस वस्तु को दृष्टिपात किया जा रहा है। नेत्र केवल दृष्टिपात करते ही मन रूपी श्वञ्जनं विद्यमान है। वह उसकी आकर्षण शक्ति उसकी आभा को अपने में धारण कर लेता है। उसी में प्रसारण, उसी में क्रिया, उसी में सर्वत्र ध्रुवा, ऊर्ध्वा, आकुञ्चन, प्रतिभा इसमें ओत-प्रोत हो जाती हैं। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है, जो विज्ञानशाला के रूप में यह ब्रह्माण्ड कहलाता है। इसमें एक आकुञ्चन शक्ति है, एक प्रसारण है, वैज्ञानिकजन प्रसारण को जान लेते हैं तो वह गति में चले जाते हैं। गति में प्रवेश करते हैं तो ध्रुवा में चले जाते हैं। ध्रुवा को जानते हैं तो ऊर्ध्वा में चले जाते हैं। ऊर्ध्वा में से सर्वत्र को आकुञ्चन बना करके यन्त्रों का निर्माण कर लेते हैं। योगीजन जब साधना के क्षेत्र में जाता है, तो इन्द्रियों में जो प्रसारण है, जो भी कुछ क्रिया कलाप हो रहा है उस सर्वत्र को योगीजन दृष्टिपात करते रहे हैं। यह तारामण्डलों की माला है, माला बनी हुई है। यह शब्दों की माला है वह शब्द भी आकार के सहित चलते रहते हैं। उन पर अच्छी प्रकार दृष्टिपात करता है, इसी प्रकार प्रीति है, प्रेम है, स्नेह है, मानवीयता है। उसमें चला जाता है। पांचों इन्द्रियों का जो स्वाहा है, इसको जान करके वह संसार में इसके स्वरूप को बाह्य जगत् में जान करके समेट लेते हैं, आकुञ्चन कर लेते हैं। आकुञ्चन करके वह अपने अन्तर्हृदय में ब्रह्माण्ड की कल्पना करते हैं। अपने अन्तर्हृदय में ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते रहते हैं।

भगवान कृष्णा का संवाद चलता ही रहा है। भगवान कृष्णा ऋषि संदीपन मुनि महाराज के

द्वारा अध्ययन करते थे। आचार्य से यह प्रश्न किया उन्होंने महाराज! यह पंचमहा जो क्रियाएं है, पंचमहा जो जगत् में आभा दृष्टिपात हो रही है जिनसे यह जगत् क्रियाशील सा दृष्टिपात आ रहा है इनका आत्मा से क्या सम्बन्ध रहता है? मैं आत्मा के सम्बन्ध को भली-भाँति जानना चाहता हूँ। जब उन्होंने यह कहा कि मैं आत्मा के सम्बन्ध को जानता चाहता हूँ तो महात्मा संदीपन ऋषि ने कहा, हे कृष्ण! प्रकृति से जब चेतना का मिलान होता है तो यह पंचमहा यह गतियाँ इसमें से सदैव उत्पन्न हो जाती हैं। और यदि चेतना का इसमें स्रोत नहीं होगा तो परमाणु में गति का संचार नहीं होगा। इसीलिए वह जो गति है, परमाणुवाद में जो गति आकु्ंचन में है, जो गति प्रसारण में है, जो गति गतियों में है, जो गति ध्रुवा और ऊर्ध्वा में है, इस गति को देने वाला बाह्य जगत् में वह चैतन्य देव है और आन्तरिक मानव के शरीर में यह गति देने वाली यह आत्मा है। तो आत्मा से इसका विशेष सम्बन्ध रहता है। इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है कि आत्मा को जानने वाला ही इस ब्रह्माण्ड की प्रतिक्रिया को जान जाता हैं आत्मा को जानने वाला वैज्ञानिक बन जाता है। आत्मा को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है, आत्मा को कैसे जाना जाएगा? यह प्रतिक्रियाएं मैंने तुम्हें भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत की हैं।

मुझे स्मरण है महाराजा संदीपन ऋषि आश्रम में प्रातःकालीन योग होता था। योग किसे कहते हैं? दो वस्तुओं के मिलान का नाम याग माना गया है। मनस्तत्व, प्राणस्तत्व, इन्द्रिय-स्तत्व सर्वत्र इन्द्रियों के मिलान का नाम, ध्यानावस्था का नाम योग है। योग से परिणत होते, देवयाग में परिणत हो जाना। देवयाग उसे कहते है जहाँ देवताओं का पूजन होता है। देवता कौन हैं? मैंने कई काल में इसकी विवेचना की हैं। देवता वह कहलाता है जो देता है, देवता वह कहलाता है जो महान् है। देवता वह कहलाता है जो सौम्य है। देवता वह कहलाता है जो देवत्व की आभा में सदैव महानता का प्रसारण होता रहता है। तो यहाँ परमात्मा का नाम भी देवता है और पंचमहाभूतों का नाम भी देवता है। तो यहाँ पाण्डित्व को वह भी देवता है।

देवत्व को धारण करने वाला उनको भोज्य देना वायुमण्डल में सूक्ष्म परमाणुओं का प्रसारण कर लेना, घृत के द्वारा, साकल्य के द्वारा वह देवपूजा के रूप में कहलाता हैं हे

यज्ञमान! जब यज्ञशाला में विद्यमान हो करके देव की पूजा करता है, देवताओं का पूजन करता है तो जानो तेरे आन्तरिक जो देवता हैं। तेरे शरीर में जो देवत्व कार्य कर रहें हैं, वह तेरे शरीर को महान् बना करके तुझे वही देवता की श्रेणी में प्रदान कर सकते हैं। वही तो देवता है। प्रातःकालीन देवपूजा होना, देवपूजा के पश्चात् ऋषि याग होना, ऋषि याग किसे कहते हैं? ऋषि-मुनियों के जीवन चरित्र को अध्ययन करना और ऋषि-मुनियों की वाणी को और मन्थन किया हुआ जो जगत् है उनकी जो लेखनियाँ हैं, उसको अपने में धारण करता हुए बाह्य जगत् में प्रसारण करना वह ऋषि याग कहलाता है। ऋषि याग के पश्चात् परमपिता परमात्मा को उसमें पिरो देते हैं। वह परमपिता परमात्मा की प्रतिभा है। यहाँ प्रत्येक मानव को साधक बनना है। चाहे वह याग के द्वारा हो, चाहे वह देवयाग के द्वारा हो, चाहे ब्रह्मयाग के द्वारा, चाहे ऋषि याग के द्वारा। प्रत्येक मानव को अपने-अपने कर्तव्यववाद में परिणत होना हैं यह हमारे विद्यालयों की परम्परागतों से एक प्रणाली मानी जाती है। यही परम्परा है इस परम्परा को अपने हृदय में धारण करता हुआ इस संसार-सागर से पार हो जाएगा। इसके पश्चात् जब यह तीनों क्रिया कलाप हो जाना उसके पश्चात् वहाँ विज्ञान की क्रियात्मक शिक्षा देना। महाराजा संदीपन ऋषि के आश्रम में इस प्रकार की यज्ञशालाएं, विचार-शालाएं भिन्न-भिन्न प्रकार की देव पूजाओं के सम्बन्ध में चिन्तन और मनन होता रहा। उसी स्थलियों पर विज्ञान के परमाणुओं को जानना यह जो प्रकृति की मैंने पांच गतियों का वर्णन किया हैं ब्रह्मचारियों के यहाँ शिक्षार्थियों का विशेषतव था, शिक्षा की प्रणाली एक महान् बनती है। महान् उस काल में बनती है जब मानव अपने जीवन को क्रियात्मक बाह्य जगत् को क्रियात्मक दृष्टिपात करता हुआ और आन्तरिक जगत् में प्रवेश कराता हुआ अपने हृदय अगम्य ज्योति को दृष्टिपात कर लेता है। मानव ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। भगवान कृष्णा की भाँति वह ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है।

मुझे परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से भगवान कृष्णा के जीवन को अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। भगवान कृष्णा सदैव अपने जीवन को क्रियात्मक बनाते रहते थे क्योंकि उनका विज्ञान सदैव इनका योग भी महान् था, उनका अनुष्ठान भी महान् था। उनका आयु भी विचित्र था। मैंने तुम्हें पुरातन काल में कहा था जब भगवान कृष्णा

मृत्यु को प्राप्त हुए तो उनकी आयु 362 वर्ष की आयु थी इतनी आयु में सर्वत्र प्रतिक्रियाएं की।

52. त्रि-विद्या का योग द्वारा साक्षात

भगवान कृष्ण का जीवन ऐसा महान्, ऐसा पवित्र, जब वह जो पंचीकरण, अपनी इन्द्रियां को समेट करके वह जो हृदयस्थली में ले जाते थे, तो उनकी योग की प्रवृत्तियाँ बिखर जाती थीं और योग की प्रवृत्तियाँ जब बिखर करके जब बाह्य जगत से सुगन्धि को लाती थीं, आन्तरिक जगत से वह सुगन्धि प्रसारण होती थी। तो पूज्यपाद गुरुदेव के समीप विद्यमान हो करके वह अनुसन्धान करते रहते थे। अनुसन्घान प्रत्येक इन्द्रिय का अनुसन्धान, प्रत्येक प्राणों का अनुसन्धान, प्राण कौन क्या यह किस-किस प्रकार का प्राण हैं? उसको जानना है तो वह इस प्रकार वह अपने में मुद्रित होते हुए, अपनी महान आभा को सुगन्धि में लाना ही उनका कर्त्तव्य कहलाता था। तो दोनों विचारक बन करके वनों में, पीपल के वृक्ष के नीचे अनुसन्धान कर रहे थे।

गुरु ने उन्हें यह कहा कि अध्ययन करो। तुम अध्ययन करो। उन्होंने तृतीय कहा कि तुम अध्ययन करो। तो दोनों अध्ययन के लिए एक वृक्ष के नीचे विद्यमान हो गये अध्ययन करने लगे। तो उन्होंने महात्मा की वार्त्ता को पान करते हुए सुदामा ने कहा, हे कृष्ण! आचार्य ने हमें तीन समय यह कहा है कि तुम अपना अध्ययन करो, अध्ययन करो, अध्ययन करो, ऐसा क्यों कहा है? कृष्ण जी बोले कि हे सुदामा! तुम पूज्यपाद गुरुदेव की आन्तरिक ध्वनि को नहीं जानते हो, यह तो उनकी आन्तरिक ध्वनि है आन्तरिक ध्वनि में मुद्रित हो करके ही मुद्रिका बनती है। पूज्यपाद गुरु ने कहा है क्या तुम अध्ययन करो अध्ययन का अभिप्रायः यह है कि वेदमन्त्र का अध्ययन करो। तुम ज्ञान का अध्ययन करो परन्तु जब द्वितीय कहा कि अध्ययन करो तो वह कहते हैं कि वेद की ध्वनि को तुम प्रसारण करो। तुम उसके सुयोग्य हो जाओ जब तक उसके योग्य हो जाओ तो उसका प्रसारण करो और तृतीय कहते हैं तुम अध्ययन करो तो वह कहते हैं कि अपना स्वतः अध्ययन कर लो। अपना अध्ययन करना क्या है? जो हमारे मानवीय शरीर से, प्रत्येक

इन्द्रिय से विज्ञान की धारा, नित्यप्रति जो तरंगें ओत प्रोत होती रहती हैं। बाह्य जगत में वह तरंगें जाती हैं और आन्तरिक जगत में वह तरंगें आती हैं उनसे हम भौतिक विज्ञान में प्रवेश करते हैं। इन्हीं विचारों को अध्ययन स्वतः करने से हम अपनी अन्तरात्मा को जानते हैं हम अन्तरात्मा को जान करके प्रभु से मिलान करते हैं। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा है कि तुम स्वतः अपना अध्ययन करो। हमें स्वतः अपना अध्ययन करना है।

स्वतः अध्ययन कैसे किया जाता है? यह एक विचार का विषय रहता है। एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके अध्ययन की नाना प्रकार की आभाएं हैं। अध्ययन करता हुआ मानव जब चरम सीमा पर पहुंच जाता है। तो अध्ययन की परम्परा भी समाप्त हो जाती है। हे सुदामा! तुम पूज्यपाद गुरुदेव की भाषा को नहीं जाने। पूज्यपाद ने कहा था, कि हे ब्रह्मचारियों! तुम अध्ययन करो। हे ब्रह्मचारियों! तुम अध्ययन करो। परन्तु अध्ययन का अभिप्रायः केवल अपना अध्ययन करना है। कि हमें कहाँ तक पंहुचना है आज हम इसके ऊपर विचार-विनिमय करना चाहते हैं। भगवान कृष्णा ने कहा था कि हे सुदामा! हमें वहाँ तक जाना है जहाँ हम संसार को विजय कर सकें। अपने को विजय करना ही संसार को विजय करना हैं। यह संसार विजय नहीं हुआ करता हैं, परन्तु जब हम अपने को अध्ययन में ला देते हैं, अपना स्वतः अध्ययन कर लेते हैं, अपने में हम मुद्रित हो जाते हैं, अपने में हम महान और मौन हो जाते हैं, अपने में हम वेद के पठन-पाठन के प्रकाश में रमण करते हैं तो उस समय मानव का अपने को विजय करना ही संसार को विजय करना है। तो भगवान कृष्णा ने यह सब उच्चारण किया और यह कहा कि हे सुदामा! हमें, तुम्हें जब यह कहा कि तुम अध्ययन करो तो तुम्हें-हमें दोनों को मुद्रित हो जाना है और मुद्रित कैसे हो जाना है? कि यह संसार पांचों हो वस्तुओं पर विद्यमान रहता है।

मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि यह वही मुद्रा थी जो भगवान कृष्णा और सुदामा गुरु आश्रम में चर्चा कर रहे थे, वह मुद्रा क्या थी। प्राण, अपान, उदान और व्यान को मिलान करते हुए सर्वत्र प्राण की सत्ता को बालि पुत्र एक ही पग में ले आए। परन्तु रावण यहाँ कोई ऐसा बलिष्ठ नहीं था, जो बालिपुत्र के पग को दूरी कर सके। भगवान कृष्णा ने कहा, हे सुदामा! हम और तुम दोनों विद्यमान हैं। आचार्य ने हमे कहा है कि इस प्रकार का तुम

दोनों अध्ययन करो। अध्ययन क्या? यह जो हमारे शरीर में प्राण, अपान जो गति कर रहा है, इन दोनों को रसना के द्वारा, आहार के द्वारा, व्यवहार के द्वारा अपने ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके उसको अपने में मुद्रित बना लेना चाहिए। हम मुद्रा में लाना चाहते हैं। हम स्वयं मुद्रित होना चाहते हैं। मुद्रा का अभिप्रायः क्या है? कि हमारा यह जो शरीर है यह ब्रह्माण्ड की कल्पना करता हैं, यह शरीर हमारा सर्वत्र भू-मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। लोक-लोकान्तरों की परिक्रमा कर रहा है। इसी में आभायित हो रहा है। प्रकृतिवाद को, जड़वत को शून्य आभा को यह अच्छी प्रकार जानता है। सुदामा ने कहा, हे कृष्णा! वार्त्ता तो आपने बहुत प्रिय प्रगट की है परन्तु यह हम जानना चाहते हैं कि मुद्रा का विज्ञान से क्या समन्वय रहता है? भगवान कृष्णा ने कहा कि मानव जब ध्यानावस्थित होता है कि हमें यह वस्तु जाननी है। तो हम एक वस्तु पर अनुसन्धान करते हैं। अनुसन्धान क्या है? कि हम यह चाहते हैं कि माता अपने प्यारे पुत्र को स्नेह कर रही है। जब माता स्नेह करती है तो उसका हृदय, उसके रक्त की जो तरंगे हैं वह माता के शरीर में हैं। माता के रक्त की तरंगें बाल्य के शरीर में हैं। दोनों का जब परस्पर मिलान होता है, दोनों की जब परस्पर स्नेह की प्रतिभा होती है, तो एक-दूसरे परमाणु में परमाणुओं के मोह का संचार उत्पन्न हो जाता है और वह जो संचार है वह ममता को धारण करा देता है। वही ममता की आभा में रमण करा देता है। कृष्णा ने कहा, हे सुदामा! तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए। अब रहा यह विज्ञान की वार्त्ता। विज्ञान में एक मानव यह जानना चाहता है कि मुझे कोई वार्त्ता प्रगट कर रहा है। मेरे नामोकरण की वार्त्ता दे रहा है। उस वार्त्ता को मैं मुद्रित हो करके कहता हूँ। शान्त रहो, मुझे कोई वाणी से ध्वनियाँ कर रहा है, उस ध्वनि को स्वीकार करता हुआ कहता है कि यह ध्वनि जहाँ से आ रही है और जहाँ मैं हूँ वह बहुत दूरी है। यह दूरी का जहाँ परस्पर मिलान हुआ है जिस मिलान के ऊपर वैज्ञानिक, अनुसन्धान करता है, तो अनुसन्धान करता हुआ एक यन्त्र का निर्माण करता है, उन तरंगों को एकत्रित करता हैं उन परमाणुओं को एकत्रित करके, उनको क्रियात्मक में ला करके एक यन्त्र बना करके ध्वनियाँ आ रही हैं, वह ध्वनि उस यन्त्र में प्रवेश कर रही है, हम उसे श्रवण कर

रहे हैं। वह ध्वनि अन्तरिक्ष से आ रही है।

भगवान कृष्णा ने कहा कि हे सुदामा! एक दिवस का तुम्हें स्मरण होगा, मैं पूज्यपाद गुरुदेव से अध्ययन कर रहा था। ब्रह्मा के पुत्र एक अथर्वा हुए हैं जो उनके ज्येष्ठ पुत्र कहलाते थे। वे स्थिर रह करके अपने हृदय की गति से ही संसार की आभा को संसार की इस दूरी को वह मापते रहते थे कि संसार के ऊपर हम बहुत सूक्ष्म सा विचार करेंगे। वह कैसे मापा जाता है? मापने वाला मापता रहता है। अब अथर्वा ने एक वस्तु को मापा तो और वह एक समय ऋषि-मुनियों के समाज में पहुंचे। ऋषि-मुनियों के समाज में पंहुचे तो ऋषि-मुनियों ने कहा कि प्रभु! आप अपने अनुभव की कुछ चर्चा कीजिए। उन्होंने अपने अनुभव की चर्चा प्रारम्भ की। अपने अनुभव की चर्चा जब देने लगे तो उन्होंने अपने अनुभव की विवेचना करते हुए कहा कि मैंने कुछ वेदों की ध्वनियों को श्रवण किया है, कुछ याग किया है और याग के पश्चात मैं अपने जीवन के रथ को, ले करके अन्तरिक्ष में पहुंचा हूँ। और जीवन में अन्तरिक्ष के रथ को मैं वेदमन्त्र में कहीं यह अध्ययन कर रहा था। कि मंगल का प्राणी अपनी ध्वनि कर रहा है। मंगल के प्राणी की जो ध्वनि है वह कृतियों में रमण कर रही है। उसी समय मैं इस अनुसन्धान में लग गया। मैं अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वार पर पहुंचा। वहाँ मैंने इसके ऊपर अनुसन्धान किया। ब्रह्मा के जेठे पुत्र अथर्वा ने कहा कि मैंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो ध्वनि जैसे लोकों से आती थी, लोकों से आने वाली ध्वनि का पृथ्वी से उसका मिलान होता रहता था और मिलान हो करके उस ध्वनि को मैं श्रवण कर रहा था। उस ध्वनि को यन्त्रों में लाने का मैंने प्रयास किया। मैं उसी समय त्रीचकेतु ऋषि के द्वार पर पहुंचा। त्रीचकेतु ऋषि महाराज इसके ऊपर पूर्व योगाभ्यास करके अनुसन्धान कर चुके थे। मैं जब उनके द्वार पर पंहुचा तो मैंने जब उनसे प्रश्न किया कि यह प्रभु! आपने यह सब कैसे जाना? तो उन्होंने कहा कि हमारी जो अनुष्ठान मुद्राएं हैं जिस मुद्रा को योगीजन करते हैं इस मंगल में पार्थिव तत्त्व प्रधान है। पृथ्वी को तुम वायु गति से दोनों का मिलान करके उसको यन्त्रों में, अपने अनुभव में लाओ, अनुभव की वार्त्ता को यंत्रित करो। और यंत्रित करके यह जो मानव का हृदय है इस हृदय का समन्वय परमात्मा के हृदय होता हैं क्योंकि यह जो जगत हमें दृष्टिपात आ

रहा है यह परमात्मा का हृदय है। मानव का हृदय और परमात्मा का हृदय दोनों का जब समन्वय होता है तो इस हृदय में संसार की भाषाएं विद्यमान हैं। संसार की वार्त्ताएं विद्यमान हैं। पंचीकरण वाला पंचम इसमें विद्यमान रहता है। जिस तत्त्व के लोक के प्राणियों की तुम वार्त्ता प्रगट करना चाहते हो ध्यानावस्थित हो करके उसी लोक से तुम्हारा तारतम्य हो जाएगा। यह वाक् ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने सतोयुग के काल में प्रगट किया।

उन्होंने कहा कि सम्भवा देवा भगवान कृष्णा ने कहा हे सुदामा! तुमने यह जान लिया है कि मैंने इतना कुछ अनुसन्धान अध्ययन करने वाली कुछ पोथियों से किया हैं उसी अध्ययन को मैं क्रियात्मक रूप में लाना चाहता हूँ। जैसे ध्रुवा है ऊर्ध्वा है, जैसे आकु्चन, प्रसारण और गति है इनसे प्रकृति की पांचों आभाओं का जन्म होता रहता है। प्रभु! ने जब यह संसार रचा, इस पृथ्वी में जब किसी चेतना का समन्वय हुआ, चेतना से मिलान होते ही ये पांचों प्रकृति के स्वभाव जागरूक हो गए और पांचों स्वभाव कौन से हैं? वह स्वाभाविक गुण हैं प्रकृति के प्रसारण हैं, गति है, ऊर्ध्वा है, ध्रुवा है और आकु्चन है। यह पांच इसके स्वाभाविक गुण हैं यह गुणों का गुणावादन होने लगा। इन गुणों को एक बिन्दु के रूप में, माता के गर्भ में प्रवेश हो गए। माता के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ, आकु्चन रूपों से, वही पांचों गति उस मानव के शरीर में प्राकृतिक रूप से विद्यमान हो गई। की आभा में विषय पुत्र बहुत गहन विषय है। जब मैं किसी काल में अध्यापन का कार्य करता रहता था तो ब्रह्मचारियों को यह अध्ययन कराता रहता था। ब्रह्मचारियों के अध्ययन की शैली इतनी विचित्र रही है इतनी आभा में रही है क्या उसको निर्णय करना यह असुत कहलाया जाता है।

भगवान कृष्णा ने सुदामा से कहा हे सुदामा! पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा है कि हे ब्रह्मचारियो! तुम अध्ययन करो, तुम अध्ययन करो, तुम अध्ययन करो, क्योंकि तीन समय अध्ययन का अभिप्रायः यह है कि तीन ही वाक्यों में यह जगत समाहित हो रहा है। जैसे ओ3म् की तीन मात्राएं हैं इनमें यह जगत समाहित है, पुनरूक्ति भी तीन ही प्रकार की रहती है, वेद भी तीन ही कहलाए जाते हैं। उनमें तीन ही प्रकार का विषय कहलाता है। संसार का जितना भी ज्ञान है विज्ञान है उसमें तीन प्रकार की ही वाचनाएं हैं। ज्ञान, कर्म,

और उपासना यह तीन प्रकार की विद्या वेदों में विद्यमान है। आगे इसका वृक्ष बनता रहता है। अंकुर रूपों में यह तीन ही विद्यमान हैं। प्रकृति के पांच गुण हैं परन्तु उसमें तीन प्रकार के परमाणु हैं। सबसे प्रथम पार्थिव परमाणु, जल परमाणु, अग्नि परमाणु वायु इन परमाणुओं को गति देती है, और अन्तरिक्ष में परमाणु वास करते रहते हैं। यह आभामयी जगत कहलाता है। यह त्रैतवाद है यह संसार तुम्हें त्रैतवाद की आभा में परिणत हो रहा है। जब हम त्रैतवाद की वार्त्ता को ले करके चलते हैं तो हमें यह आश्चर्य होता है यह प्रभु! का कैसा अनुपम जगत है। वेद का ज्ञान भी तीन ही प्रकार का है। मानव के शरीर में गुण भी तीन ही हैं। तीन ही प्रकार की यज्ञमान यज्ञ में आहुति दे रहा हैं तीन ही प्रवृत्ति बन रही हैं। एक

हमारे यहाँ समय-समय पर नाना शिव होते चले आए हैं। क्योंकि हमने बहुत पुरातन काल तुम्हें यह निर्णय दिया कि यह सब उपाधि काल कहलाते हैं। यह सब उपाधियाँ कहलाती हैं। महाराजा शिव के यहाँ नित्य-प्रति विज्ञान का नृत्य होता रहता था।

53. यह अनुपम जगत् एक माला के सदृश है महाराजा कृष्णा महान् वैज्ञानिक थे

भगवान कृष्णा और सुदामा जी दोनों ही अध्ययन करते रहते थे। जब ऋषि-मुनियों का जीवन अध्ययन किया जाता है तो मानव के जीवन की एक महान-धारा बन जाती है। मानव का जीवन एक पवित्रवत् बनने लगता हैं महाराज भगवान कृष्णा ने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि हे प्रभु! मैं विज्ञान में मुद्रित होना चाहता हूँ, यह जो विज्ञान है इसमें मैं कैसे मुद्रित हूँ? क्योंकि वेद के शब्द जब मुझे स्मरण नहीं आ पाते तो उस समय मुझे क्या करना चाहिए? तो महात्मा संदीपन ऋषि ने कहा कि जब तुम वेद के मन्त्र से वि्चत होने लगो इसका विधिवत संगति न कर सको तो उस समय तुम अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को समेट करके अपने हृदय अगम्य ज्योति में प्रवेश कर जाओ और अन्तर्हृदय अगम्य ज्योति में जब तुम प्रवेश कर जाओगे तो वह परमात्मा का जो हृदय है जो वह ज्ञान से परिपूर्ण है और तुम्हारा जो हृदय है दोनों का समन्वय करके

और वह जो वेदवाणी है, वेदवाणी का वह जो प्रकाश है वह प्रकाश तुम्हारी वाणी से उद्बुध होने लगता है। वह उदघृत हो जाता है।

तो महात्मा संदीपन ने पुनः कहा तुम अपने में मुद्रित होना चाहते हो? हे कृष्णा! तुम प्रत्येक वेद की ऋचा को अपने में अध्ययन करना चाहता हूँ। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि भगवान कृष्णा ने सोलह हजार वेद की ऋचाओं को कण्ठस्थ किया और कण्ठस्थ करके उसका उद्गम चलता रहता था। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानने वाला अपने में अनुसन्धानित हो रहा है। ब्रह्म की चर्चा हो रही है। ब्रह्म के विचारों का आदान-प्रदान हो रहा है। सर्वत्र राष्ट्र में ऋषियों के इन विचारों की प्रतिभा की चर्चा होती रहती है। वेद के मन्त्रों को लेकर के वह अध्ययन करते रहते थे। जहां उस ज्ञान का अध्ययन जहाँ आत्म तत्त्वों का अध्ययन, वहाँ उनका भौतिक विज्ञान विशालता में परिणत होता रहता था।

एक समय महाराजा शिव ने और हनुमान जी ने दोनों ने एक स्थली पर विद्यमान हो करके हिमालय की कन्दराओं में एक यन्त्र का अध्ययन किया था और वह यन्त्र इस प्रकार का था कि सूर्य जैसे उदय हो रहा है, उस यन्त्र के प्रभाव से वह सूर्य को अपने में ढांप लेता था और रात्री बन जाती थी। सूर्य की कृतिका का समावेश हो जाता था। तो एक समय भगवान कृष्णा और सुदामा भी इस वाक् का अध्ययन कर रहे थे। उनके आभाओं का विज्ञानमयी जो रहस्य था। उसके ऊपर अध्ययन हो रहा था। जब अध्ययन हो रहा था तो भगवान कृष्णा ने महात्मा संदीपन ऋषि से यह कहा कि हे पूज्यपाद! आप तो वेद के मर्म को जानने वाले हैं धर्म के मर्म को जानने वाले हैं परन्तु हम यह जानना और चाहते हैं कि इस यन्त्र का निर्माण कैसे होता है? इस यन्त्र के निर्माण की हम प्रतिक्रियाओं को जानना चाहते हैं। हमें ऐसा कुछ स्मरण है उन्होंने कहा, हे कृष्णा! तुम भौतिक विज्ञान में जाना चाहते हो या आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करना चाहते हो? भगवान कृष्णा ने कहा कि मैं उस विज्ञान को जानना चाहता हूँ जो विज्ञान वेद की प्रतिभा के गर्भ में विद्यमान रहता है। क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है और मानव की प्रवृत्ति इस प्रकाश को जानना है। प्रत्येक मानव की, प्रत्येक विद्यार्थी की आचार्य के चरणों में यह उत्सुकता बनती है कि मैं प्रत्येक वस्तु का विशेषज्ञ बन जाँऊ। मानव उस धारा को जानना चाहता है,

उसका विशेषज्ञ बनना चाहता है। भगवन! तुम्हारे चरणों में वैदिकता के मन्त्रों का बहुत सा अध्ययन किया है परन्तु जो उनमें उद्गम है, उनमें जो रहस्य है, उन रहस्यों के लिए मैं आपके चरणों में विद्यमान रहता हूँ क्योंकि मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अनुसन्धानवेत्ता बनूं। तो मुझे स्मरण है उनके यहाँ जहाँ हमारे यहाँ विद्यालयों में यज्ञशाला होती है, उन्हीं विद्यालयों में एक सूक्ष्म सी क्या विशाल विज्ञानशाला भी होती है। जहाँ ज्ञानशाला भी है वहाँ विज्ञानशाला, जहाँ यन्त्रों का निर्माण, यन्त्रों का धातुपिपाद को निर्माण करने की विधिवत् क्रिया और यन्त्र उसमें विद्यमान रहते हैं। तो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब भगवान कृष्णा ने यन्त्रों को जानने का प्रयास किया।

अग्नि के धुम्र में यह विशेषता होती है कि वह कुछ वह कालिमा को ला करके सूर्य की कृतियों को अपने में धारण कर लेता है। परन्तु वेद में जहाँ यह शब्द आया, वहाँ वेद के मन्त्रों में यह भी शब्द प्रतिपादित होने लगा, उन्होंने कहा कि यह रात्रि क्यों होती है? उन कणों को जानना चाहिए। कहीं उन्होंने यह अध्ययन किया, कि पृथ्वी जैसे गतिशील रहती है, सूर्य का जैसे-जैसे आँगन में गति करती सूर्य के सन्मुख आ जाती हैं। वहीं प्रकाश होता रहता है परन्तु यह भी यथार्थ है परन्तु रात्रि मानव के दिवस में भी रात्रि आ जाती हैं वहाँ उन्होंने इन्हीं धातु-पिपादों पर अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया और वह इन वाक्यों पर अनुसन्धान करने लगे कि जब मानव के मस्तिष्क में सुसज्जिता आ जाती है। तो उस समय मानव के नेत्रों के समीप अन्धकार आ जाता है। इस अन्धकार की कालिमा को ले करके उन्होंने कहीं वेदों में ऐसा अध्ययन किया, क्या मुझे तो उस वस्तु को जानना है। तो भयंकर वनों में संदीपन ऋषि के यहाँ अनुसन्धान करने लगे और उन्होंने यन्त्रों का निर्माण करना प्रारम्भ किया।

उस विद्यालय में अनुसन्धानशाला है, विज्ञानशाला है, वैज्ञानिक यन्त्रों में नाना धातु-पिपाद को लेकर के जल के परमाणुओं को, पृथ्वी के परमाणुओं से समन्वय करते, अग्नि के परमाणुओं से जब समन्वय किया गया, अग्नि के उन परमाणुओं में जिनमें धुम्र विशेष होता है, उन परमाणुओं को ले करके उस परमाणुवाद को अन्तरिक्ष में से लेना प्रारम्भ किया। कुछ धातुओं से लेना प्रारम्भ किया तो एक अंधरेखा नाम के यन्त्र का निर्माण किया था।

जिस अंदरेखा नामक यन्त्र का महाभारत के काल में जयद्रथ को नष्ट करने के लिए आएं। उस यन्त्र का भगवान कृष्णा ने निर्माण किया था। इसी यन्त्र को महाराजा शिव ने और महाराजा हनुमान ने त्रेता के काल में निर्माण किया था भगवान राम और रावण का, दोनों का संग्राम हो रहा था, तो उन्होंने ऐसे यन्त्र का वायुमण्डल में प्रसारण कर दिया कि अन्धकार छा गया। परन्तु रावण भी एक विशेष वैज्ञानिक था। उन्होंने ऐसे यन्त्र का निर्माण किया, जिससे वृष्टि हुई, अग्नि की वृष्टि होने लगी।

केवल यह कि भगवान कृष्णा, संदीपन ऋषि के यहाँ जब अध्ययन करते रहते थे तो अध्ययन की प्रतिक्रियाएं प्रारम्भ रहीं, अध्ययन चलता रहा अड़तालीस वर्षों तक संदीपन ऋषि के यहाँ उन्होंने अध्ययन का कार्य किया अध्ययन उनका चलता रहा अड़तालीस वर्षो में वह विज्ञान में भी परायण होने लगे। जहाँ उनका विज्ञान विशालता में रहता था वहाँ उनका सौम्य क्रिया-क्लाप था, उनकी चरित्र की प्रतिभा की वह महानता में रहती उसकी संतुलना उस समय कोई कर नहीं पा सकता था।

भगवान कृष्णा और सुदामा जी दोनों मुद्रित हो करके ऋषि-मुनियों के साहित्यों की चर्चा करते रहते थे। दोनों उनके जीवन चरित्र, उनके विचारों का आदान-प्रदान होता रहता था, उसके ऊपर उनका विचार क्या होता? वे अपने में मुद्रित होने के लिए आत्म-तत्त्व की चर्चा करते रहते थे। कि मानव अपने में कैसे मुद्रित हो जाता है? अग्नि को पृथ्वी से मिलान करना चाहता है और अग्नि, और पृथ्वी को वायु से मिलान करना चाहता है और वायु को अन्तरिक्ष में, अग्नि से समन्वय करना चाहता है। इस प्रकार का उनका विचार-विनिमय आदान-प्रदान होता रहता था। उन विचारों को ले करके दोनों अपने में वे अपने में मुद्रित होना और योगाभ्यास के द्वारा अग्नि और पृथ्वी के मुद्रित हो करके, पृथ्वी में गर्भ में प्रवेश कर जाते थे और चिन्तन करते रहते थे कि अग्नि का भण्डार इस पृथ्वी में कैसे गति कर रहा, कैसे धातुओं को तपा रहा है? इसी प्रकार वह शीतली आभा में रमण कर जाते और शीतली आभा में रमण करने से वह शीतल आभा को जान करके वह चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा अपने मन की प्रवृत्ति को उसमें परिवर्तित करते रहते थे। इसी प्रकार सूर्य विज्ञान नाना प्रकार का मुद्रा जानते थे। मुद्रा क्या होती है? मुद्रा यह है एक मानव ध्यानावस्थित

होना चाहता है एक मानव मुद्रित होना चाहता है वह अपने नेत्रों की ज्योति की श्रोतों की धारा को घ्राण की मन्द सुगन्ध को और त्वचा की प्रीतियों को, वाणी के उद्गम को, वह एक सूत्र में लाना चाहता है। वह एक सूत्र बनाना चाहता है। यदि उसने अपनी पाचों अनुष्ठानों को एक सूत्र में लाने का और उनको मुद्रित करने का प्रयास कर लिया वहाँ प्राण शक्ति को लाने का प्रयास कर लिया है तो पांचों इन्द्रियां, इन्द्रियों का विषय हृदय में प्रवेश हो करके हृदय में वह प्रचण्ड ज्ञान रूपी अग्नि का वह याग हो करके मानव की बुद्धि के सम्पूर्ण तन्तुओं का स्पष्टीकरण हो जाता है। और मानव को जब मस्तिष्क के तन्तुओं का स्पष्टीकरण हुआ तो वही मानव आत्म परमात्मा की, आत्मा की, प्राण का, जितना विज्ञान है वह उस महापुरुष के लिए खिलवाड़ की भाँति हो जाता है।

तो मानव अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना चाता है, कहीं वायु के ऊपर विजित होना चाहता है, कहीं वह शब्द के ऊपर अपने को विजय करना चाहता है। कहीं वाणी को विजय करना चाहता है जब वाणी पर विजय कर लेता है उसका जो दर्शन है वह उसका ऊँचा बन जाता है। वाणी के दो प्रकार के स्वरूप माने गये हैं। एक वाणी का स्वरूप स्वादनों में, रसों में परिणत हो जाता है। एक रसों को विजय करने में परिणत हो जाता है।

जब विद्यमान थे तो अपनी वाणी पर विजय करना चाहता हूँ। मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय करना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा कि कौन-सी धारा पर विजय करना चाहते हो? उन्होनें कहा-प्रभु! मैं वैदिक प्रकाश को लेकर के मैं अपने को स्नानित करना चाहता हूँ। उन्होंने वाणी को वह मानव ऊँचा बना सकता है जो ब्रह्मवर्चोसि बन सकता हो और ब्रह्मवर्चोसि कौन बनता है? जो वाणी को पवित्र बना लेता है और दोनों एक ही सूत्र के मनके हैं। वाणी को कैसे पवित्र किया जाए? उसका आहार पवित्र होना चाहिए। आहार कैसा होना चाहिए? एक समय तो वायु का आहार होना चाहिए और एक समय अन्नाद का आहार होना चाहिए। और एक समय मानव अपनी प्रवृत्तियों को संयम में लाने के लिए चिन्तन का आहार होना चाहिए। मानव के द्वारा तीन प्रकार के आहार होते हैं। मानव के द्वारा, जिनसे मानव की प्रवृत्तियों में महानता का जन्म होता है। सबसे प्रथम मानव को आहार

पान करना चाहिए वायु का आहार प्रातःकालीन जब मानव अपने आसन से पृथक होता है अपनी नाना प्रकार की क्रिया कलापों से निवृत्त हो करके वह चिन्तन के लिए सबसे प्रथम वह अपने में प्राणायाम, शीतली प्राणायाम और अग्नि प्राणायाम सोमभुक प्राणायाम नाना प्रकार के प्राणायामों को करें। जो वायु से आहार कर लेता है उसके पश्चात् वह अन्नाद के आहार को पान करना चाहता है अन्न क्या है? अन्न कहते हैं जो प्रभु ने प्रसाद रूप में सृष्टि के प्रारम्भ में मानव को प्रदान किया। यह जो अन्न है मेरी प्यारी माता अपने भोजनालय में अन्न को तपा रही है परन्तु जब तपाती रहती है तो माता अपने पुत्र की प्रवृत्ति को ऊँचा बनाने के लिए गायत्री छन्दों का पठन-पाठन कर रही है। गायत्री छन्दों का जब पठन-पाठन हो रहा है वेद की ध्वनियाँ हो रही हैं वह वह अन्न को तपाया जा रहा हैं तो वह जो माता के उद्गार है वाणी के वाणी का सम्बन्ध हृदय से होता है। हृदय का सम्बन्ध वेद रूपी प्रकाश से होता है। और वह जो प्रकाश है परमपिता परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान है। उससे जो परमाणु हैं उसमें जो एक यन्त्र बन गया है एक आकार बन गया है, माता की वाणी का वह अन्न में विद्यमान हो जाता है, वह संस्कारित हो जाता है। उस अन्न को पुत्र पान करता है तो उसकी बुद्धि महान् बनती है। पतिदेव पान करता है उसकी बुद्धि महान् बनती है। कोई महापुरुष अतिथि आ करके पान करता है तो उसकी बुद्धि भी पवित्र बनती है, परन्तु वह अन्न कैसा हो? सात्विक अन्न हो और माता के वेद के मन्त्रों की ध्वनि वाला अन्नाद होना चाहिए।

मैं इतने कठोर, इतने गम्भीर रहस्यों में तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ। अध्ययन करना, आहार करना, उसके पश्चात् जब आहार पवित्र होता है तो मानव के व्यवहार की प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं। व्यवहार पवित्र बनता है वह सबसे प्रथम व्यवहार में, जनता में, जर्नादन को दृष्टिपात करता है। वह समाधिष्ट होता है तो अपनी प्रवृत्तियों को, आन्तरिक जगत् में ले जा करके वह परमपिता परमात्मा के गम्भीर सागर में चला जाता है, गम्भीर जगत् में चला जाता है। चेतना के सूक्ष्म रहस्य में चला जाता है, प्राण की आभा को जान करके वह ध्यानावस्थित हो करके वह बाह्य जगत् को आन्तरिक जगत् में दृष्टिपात करता है और आन्तरिक जगत् को बाह्य जगत् में दृष्टिपात करता है। उसको संसार और हृदय को संसार

दोनों का समन्वय हो करके प्रभु ही प्रभु दृष्टिपात आने लगता है। तो गम्भीर अध्ययन होना चाहिए। गभीर अध्ययन की चर्चा का अभिप्रायः है आहार को पवित्र बनाना है। वाणी उद्गान गा रही है। वाणी प्राण को ले करके उद्गान गा रही है, आहार गान गा रहा है तो प्राण को ले करके गा रहा है। वह जो चिन्तन सुधा है जिसके गर्भ में जाने से प्राण के साथ ही मन को पृथ्वी के गर्भ में ले जाता है, पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार की धातु-पिपाद का निर्माण हो रहा है, उसको लेकर उसकी प्रवृत्ति और लोकों में प्रवेश कर जाती है। उसके ज्ञान और विज्ञान दोनों उसके सिद्ध हो जाते हैं वह ज्ञानी भी है, वैज्ञानिक भी है। और वह विज्ञानवेत्ता बन करके वह इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है। एक पवित्र आभा जन्म हो जाता है।

तो सबसे प्रथम प्रातःकालीन प्राण को ले करके, वह अंगुष्ठानों को ले करके वायु को विजय करना है वायु अंगुष्ठानों को अपनाने के लिए तत्पर हो जाते। अग्नि को विजय करना हो तो अग्नि और पार्थिवता से मिलान हो जाए, तो यह अपने हृदय अगम्य् ज्योति से और इन्द्रियों के द्वारा अपने में स्पष्टीकरण करता है। भगवान कृष्णा को जीवन अध्ययन करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। तो मुझे दृष्टिपात हुआ कि उनके जीवन में बाह्य जगत और आन्तरिक जगत् दोनों सुसज्जित थे और दोनों पर अनुशासन के नाते वह विराट स्वरूप की प्रतिक्रिया को भी जानते थे। क्योंकि परमात्मा का यही तो विराट स्वरूप होता है कि वह आन्तरिक जगत् को बाह्य जगत् को, दोनों को एक-दूसरे में समन्वय करने वाले हैं। जैसे प्राण और अपान दोनों को समन्वय करने से, अपान से, प्रकृति से अस्वानम को जाना जाता है परन्तु प्राण अपान को जानने से अन्तरिक्ष के परमाणुओं में किस-किस गति से परमाणु गति करता है? वह जाना जाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने जब विज्ञान और ज्ञान के ऊपर अध्ययन प्रारम्भ किया तो आध्यात्मिक विज्ञान भौतिक विज्ञान दोनों का समन्वय करने का प्रयास किया, दोनों का समन्वय जब तक नहीं किया जा सकता, तब तक यह संसार ऊँचा नहीं बन सकता।

हम किसी अस्वत लोकों में गति करने के लिए तत्पर हो जाते हैं मुझे भगवान कृष्णा और नाना ऋषि मुनियों का जीवन स्मरण आता रहता है। ऋषि-मुनि यन्त्रों का निर्माण करके

कहीं वह मंगल में गए हैं, कहीं वह सूर्य लोकों तक की यात्राएं हमारे आचार्यों ने विज्ञान द्वारा की हैं। जैसे सूर्य की किरण की गति कर रही है उसी के साथ अपनी प्रवृत्ति को ले जाना, अपनी मन की धाराओं को ले जाना उनके ऊपर गम्भीर अध्ययन करना, अपने मानवीय जीवन का अध्ययन करना है। इस अध्ययन प्रवृत्ति से ही यह समाज ऊँचा बन सकता है, यह अध्ययन की प्रवृत्ति से ही विद्यालय ऊँचे बनते हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों से राष्ट्र पवित्र बनता है। परन्तु विज्ञान के नाना तंतुओं में, जब मानव प्रवेश करता है, नाना प्रकार की तंतुओं की वार्त्ताओं में रमण करता है तो अपने में गम्भीर मुद्रित हो करके अग्नि का चलन करता है, अग्नि की आभा में अपनी प्रवृत्तियों की समिधा बना करके हृदय रूपी अग्नि में उनका स्वाहा करके अन्तरिक्ष में प्रवेश कर जाता है, वह अन्तरिक्ष में रमण करता है। हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने नाना प्रकार की चित्रावलियों का निर्माण किया था।

वह चित्रावली भगवान कृष्णा के द्वारा भी थी। महाभारत का जब संग्राम प्रारम्भ होने लगा तो भगवान कृष्णा धृतराष्ट्र के द्वारा पहुंचे। महाराजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन थे, नेत्र नहीं थे प्रज्ञा चक्षु थे, उनका संजय उनका एक मन्त्री था। मन्त्री अपनी आभा में उनके चरणों की वन्दना करता रहता था। भगवान कृष्णा ने यह कहा कि हे भगवन! तुम्हारे इन राजकुमारों में संग्राम होने जा रहा है तुम क्या चाहते हो, तुम्हारी कोई इच्छा है? उन्होंने कहा कि संग्राम होने जा रहा है तो हे कृष्णा! मैं चाहता हूँ कि मेरे द्वारा ऐसा कोई यन्त्र होना चाहिए, जिससे यह क्रिया-कलाप जो कुरुक्षेत्र में हो वह मुझे हस्तिनापुर में वर्णित होता रहे। उन्होंने कहा बहुत प्रिय। तो भगवान कृष्णा ने संदीपन ऋषि महाराज के चरणों में विद्यमान हो करके उन यन्त्रों को जाना था। तो क्रिया में लाया हुआ यन्त्र उन्होंने चित्रावली धृतराष्ट्र के यहाँ प्रदान की और वहाँ जोकुरुक्षेत्र में संग्राम हो रहा था और उस यन्त्र में उसका चित्र आ रहा है वह चित्र जैसे आता उसी प्रकार संजय प्रज्ञा चक्षु को प्रदान करता रहता था।

यह तो मानव का विज्ञान है परन्तु कल समय मिलेगा तो परमात्मा के विज्ञान की चर्चा करेंगे कि वह प्रभु! कितना महान वैज्ञानिक हैं? आज का विचार-विनिमय समाप्त। अब मुझे समय मिलेगा आज के विचारों का अभिप्राय क्या? कि अब भगवान कृष्णा ने नाना ऋषि

मुनियों के जीवन चरित्र अध्ययन कर-कर के नाना प्रकार के विज्ञान को जाना यह आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

54. भगवान कृष्ण का गुरु संदीपन से योग-विद्या-ज्ञान प्राप्त करना

महानन्द जी का आधुनिक विज्ञान के अधूरेपन का वर्णन करना

भगवान कृष्ण ने महात्मा संदीपन ऋषि महाराज से यह कहा था एक समय क्या हे भगवन! मैं विराट स्वरूप ब्रह्म को जानना चाहता हूँ। वह जो ब्रह्म का विराटमयी स्वरूप है उसे मैं जानना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि अपान और प्राण का दोनों का समन्वय कैसे करता है साधक? जब भगवान कृष्ण ने यह बाल्य काल में युवा अवस्था में भगवान कृष्ण की आयु उस समय 20 वर्ष 22 दिवस की आयु थी। जब यह उन्होंने यह प्रश्न किया तो महात्मा संदीपन ऋषि क्योंकि इस योग के मर्म को जानते थे, जहाँ वह व्याकरण के, ध्वनियों के मर्म को जानते थे वहाँ वह योग की प्रतिभा को भी जानते थे। तो योग की प्रतिभा में ले जाते हुए, उन्होंने कहा कि तुम अपान और प्राण की आभा को कृष्ण तुम जानना चाहते हो यह प्रश्न तुम्हारा बड़ा एक महान् है, क्योंकि इस अपान और प्राण के मिलान करने वाले बहुत से ब्रह्मवेत्ता हुए हैं। इसमें बहुत बुद्धिमान हुए हैं। तुम राष्ट्र और समाज की चर्चा करो तुम विज्ञान की चर्चा करो। परन्तु उन्होंने कहा, नहीं, प्रभु! मेरे हृदय की यह आकांक्षा है और मैं चाहता हूँ कि मैं संसार में विराटमयी ब्रह्म को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। तो उस समय भगवान कृष्ण से संदीपन ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! आओ तुम विराजो! वह विराजमान हो गए। उन्होंने कहा योग की आभा में तुम गमन करना चाहते हो। तो सबसे प्रथम अग्नि और गति दोनों की मुद्रा को उन्होंने मुद्रित करना प्रारम्भ किया। प्राण को मन पर, जब आभाषित कर दिया जब प्राण और मन दोनों का समन्वय, दोनों एक सूत्र में जब परिणत हो गए तो वायु का जो वेग था, वह नाभि केन्द्र से प्रकाशित होता हुआ, गति करता हुआ, प्राण की मस्तिष्क में जो टिकटिकी कृतिका है उसमें स्थिरता आ जाती है। जब टिकटिकी अस्वानम् हो जाती है वह जो कृतिका है जिसे हम त्रिवेणी

कहते हैं जहाँ दोनों का, मन का और प्राण और अपान का नाभि केन्द्र से समन्वय हो करके दोनों का मिलान होता है। वह मूलाधार में भी होता है, नाभि चक्र में भी होता है। नाभि चक्र से वह त्रिवेणी के स्थान में, तीनों प्रकार के, परमाणुओं का मिलान हो जाता है। क्योंकि वास्तव में, इस मानव शरीर में प्राण, अपान और उदान इन तीनों प्राणों के एकाग्र करने से ही योग सिद्ध हो जाता है। कैसे होता है? प्राण में से जितना भी अन्तरिक्ष वाद है, लोक-लोकान्तरों वाद है, इसमें परमाणुओं का उद्गम होता रहता है उसका वैज्ञानिक बन के वह विज्ञान प्रकृति का इस अन्तरिक्ष की आभा में रमण हो जाता है। परन्तु जब यह अपान में जाता है तो निचला स्थान जो है पृथ्वी का गर्भ है, खाद्य और खनिज है, प्राण-अपान के मिलान होते ही दोनों के दोनों विज्ञान का स्पष्टीकरण हो जाता है। परन्तु जब उदान को लिया जाता है इसमें उदान का मिलान किया जाता है तो उदान के मिलान से जितना चित्त का मण्डल है वह नाना जन्म-जन्मांतरों का है, हो करोड़ों जन्मों का क्यों न हो परन्तु उसके संस्कार उसके समीप नृत्य करने लगता है। यह तीन प्राण माने गए हैं प्राण, अपान और उदान इनकी त्रीति आभा को जानने से योगी, योगी योग सिद्ध हो जाता है।

समाधि ध्यानावस्थित यह मुद्रिका बनती है और मुद्रिका बन करके जब मन को एकाग्र किया जाता है तो ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु उसके समीप आकर के प्रकृतिवाद नृत्य करने लगता है और वह नृत्य का बहुत सा अनुभव ऐसा है जो वर्णन करता है, बहुत-सा अनुभव ऐसा है जिसका हम बाह्य जगत में हम वर्णन नहीं कर सकते। तो विचार-विनिमय क्या? क्या वेद का ऋषि कहता है, वेद का मन्त्र कहता है, कि हम प्राण, अपान और उदान तीनों का समन्वय करने से हमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतीति होने लगती है।

55. पुरातन काल की गुरु-शिष्य परम्परा व आधुनिक काल

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब द्वापर के काल में भगवान कृष्णा यह विवेचना देते रहते थे, कि भगवान कृष्णा याग करते रहते थे। भगवान कृष्णा का याज्ञिक जीवन एक महत्ता में रहा है। उन्होंने कहा है कि अन्तरिक्ष में यही परमाणु ओत-प्रोत हो जाते हैं और

अन्तरिक्ष परमाणुओं से ही, यह वायुमण्डल अन्तरिक्ष एक महानता की ज्योति में परिणत हो जाता है।

भगवान कृष्णा का जीवन प्रायः उस काल में एक महान और पवित्र माना गया है। उनका बाल्यकाल, उनका युवा काल महाभारत के संग्राम वाला काल, तो वह भिन्न-भिन्न प्रकार के काल, जो इसमें वृत्तियों में रहे है, जो विद्यार्थी काल था वह बड़ा विचित्र रहा है। संदीपन ऋषि के, यहां ब्रह्मचारी अध्ययन कर रहे है, उसी पंक्ति में एक भगवान कृष्णा अध्ययन में लगे हुए है उनके अध्ययन की जो प्रतिक्रिया रही है, वह बड़ी विचित्र रही है। एक समय रात्रि काल, मध्य रात्रि का काल था, संदीपन ऋषि अपने आश्रम में विद्यमान थे, अपने कक्ष में, निंद्रा के आंगन में विद्यमान थे। मध्य रात्रि में सुदामा और कृष्णा दोनों एक वाक् को ले करके, दोनों का विचार-विनिमय होने लगा और वह विचार यह था की यह प्राचीदिक किसे कहते है? प्राची किसे कहते है, दोनों ने एक दूसरे में विचार किया की प्राचीदिक् कहते है दिशा को, उसका दूसरा रूप प्राचीदिक् दिक् कहते ही अग्नि का स्वरूप बन जाता है। तो प्राची में अग्नि का वास रहता है, ऐसा दोनों ने निर्णय किया। परन्तु दोनों का निर्णय कोई निर्णायक नहीं हुआ, विचारने लगे, अपने में सन्तुष्टि नहीं हुई, उन्होंने दूसरा प्राची का अभिप्रायः लिया, प्राचीदिक् जब ऐसा वेद का वाक् उनके समीप आया, कि प्राची में अग्नि रहती है और अग्नि प्रकाश का दूत है। इसी के ऊपर विचार-विनिमय होने लगा। विचार होते ही दूसरा रूप उन्होंने लिया, कि अग्नि परमपिता परमात्मा को कहा गया है, क्योंकि जो अग्नि ऊर्ध्वा में कहलाती है, अग्नि के भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची है। जैसे अग्नि के भी भिन्न-भिन्न रूप माने गये है जैसे गार्हपथ्य नाम की अग्नि है, गृहपथ्य नाम की अग्नि है वह वैश्वानर नाम की अग्नि है और आवहनीय अग्नि मानी गई है। यह चार प्रकार की अग्नियों का चयन, प्रायः वैदिक काल के ऋषि, अपने में धारण करते रहे है। तो यह प्राची में वास करने वाला है, प्राची का द्वितीय स्वरूप यह बनता है जो ऊर्ध्वा में ले जाने वाली हो, जिसकी ऊर्ध्वा गति हो, उसका नाम प्राची दिक् कहते है।

तो दोनों अपने में विचार-विनिमय कर रहे थे, परन्तु इसके पश्चात भी अपने में निपटारा नहीं हुआ। मध्य रात्रि का काल था, भगवान कृष्णा आचार्य के कक्ष में जा पहुंचे, आचार्य

गाढ़ निद्रा में परिणत है। वह अपने आंगन में वह अन्तःकरण की वृत्तियों में रत्त है, प्राण के साथ आत्मा जागरूक है। मन अपनी साम्यावस्था में परिणत है। ऐसा जब ब्रह्मचारियों ने ऋषि को दृष्टिपात किया तो जागरूक करना, यह उनके लिए पापाचार कहलाता है वेद का मन्त्र कहता है कि किसी को जागरूक यदि करना है तो जिस विषय का वह प्राणी है, उस विषय की ध्वनियां उच्चारण करने लगो। वह जागरूक हो जाता है।

भगवान कृष्णा और सुदामा जी विचार रहे थे कि आचार्यों को कैसे जागरूक किया जाए निन्द्रा में है। तो उन्होंने एक वेद का पठन-पाठन तो उन्होंने प्रातः कालीन कराया था, तो उस पठन-पाठन की अशुद्धियों में लग गये। उसका स्वर, व्यञ्जन का विचार नहीं रहा, जब नहीं रहा तो ऋषि जागरूक हो गये, ऋषि ने कहा-हे ब्रह्मचारी! तुम अशुद्ध उच्चारण कर रहे हो। उन्होंने कहा प्रभु! अवश्य। तो उन्होंने कहा-कहो तुम क्या जानना चाहते हो? उन्होंने कहा-प्रभु हम प्राचीदिक् अग्नि को जानना चाहते है। उन्होंने कहा प्राचीदिक अग्नि प्राची में तो अग्नि ही अपना वास करती है और वह अग्नि प्राचीदिक कहलाती है। जो पूर्व दिशा में प्रकाश आता है जैसे प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है और वह अपनी नाना प्रकार की किरणों के सहित किरणों में वासित हो जाता है। वह किरणें अपने में वास करती हुई, प्राचीदिक अग्नि को प्रकाश में ला देती है। वह दिशा प्रकाशित हो जाती है। वे प्राचीदिक् में ईश्वर वास करता है। परमपिता परमात्मा उसमें निहित रहता है। तो जब ऋषि ने इस प्रकार अपना निर्णय दिया, अपना वाक् प्रगट कराया, तो दोनों प्रसन्न हो गये, उन्होंने कहा-धन्य है प्रभु! परमात्मा स्वतः अपने में प्रकाश है, वह प्रकाशमयी कहलाती है। उसमें से श्री में से अपने में प्रकाश ग्रहण कर लेते है। तो महात्मा संदीपन ने कहा-हे कृष्णा! तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम्हारा जन्म कैसे हुआ था। जन्म की गाथा संदीपन ने कहनी प्रारम्भ की, कि तुम्हारा जीवन प्राचीदिक अग्नि में कहलाता है। वह प्राचीदिक कहलाता है। ऐसे महापुरूषों का समाज, अपने में पर्वों में परिणत हो जाती है जब राष्ट्रीयता, मानव के हृदय में समा जाती है राष्ट्रीयता में भी स्वार्थवाद आ जाता है, वह स्वार्थवाद प्रकाश को और अंधकार को नहीं जानकारी में लाता।

तो मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में महाराजा कंस ने यह संकल्प किया

था, क्या मेरी भगिनी से, जिन संतानों का जन्म होगा, उन संतानों को मुझे मृत्यु के मुखारबिन्दु में परिणत करा देना है, उसके मूल में क्या था? उसके मूल में केवल उन्हें स्वार्थवाद आ गया था और स्वार्थवाद की राज्य में वृत्तियां परिणत होती है तो वहां अशुद्धवाद और मृत्यु की कृतियां ओत-प्रोत हो जाती है, अहिंसा न रह करके हिंसा में राष्ट्र परिणत हो जाता है।

वह राष्ट्र अग्नि में परिणत हो जाता है, तो इसलिए स्वार्थवाद है, जब उनमें स्वार्थवाद आया तो अपनी भगिनी देवकी इत्यादि को उन्होंने अपने कारागार में स्थित किया। क्योंकि हमारे यहां परम्परागतों से जितने भी महापुरुषों का जन्म होता है, वे सब कहीं कारागार में है, कहीं वनों में उत्पन्न होते है इसी प्रकार उनकी उत्पत्ति का मूल कहा जाता है। भगवान कृष्णा जितने महान वैज्ञानिक थे, परन्तु उनका जो जीवन चरित्र, उनका जो उत्पति हुई है, वह उत्पत्ति कंस के कारागार में हुई। कारागार में से निकल जाना, यह कोई ऐसा आश्चर्य नहीं है और आश्चर्य यह है कि वह दिवस जागरूक का था, परन्तु जो प्रहरी थे वह भी जागरूक न रहे जब परमपिता परमात्मा किसी के प्राणों की रक्षा करता है या प्राणों को ऊर्ध्वा में ले जाता है तो उस समय किसी न किसी प्रकार परमपिता परमात्मा उसकी रक्षा करते रहते है। प्रहरी सब निन्द्रा में निन्द्रित हो गये, और उनके पिता वसुदेव जी उसे बाल्य को ले करके नदी से दूरी, करते हुए नन्द के यहां, उसका वास कराया। उससे पूर्व जो उनका जानकारी का क्रियाकलाप रहा है वह बड़ा विचित्र है। वहां उनका प्रवेश हो गया, वह वहां पनपने लगे। राजा कंस को जब यह प्रतीत हुआ कि कारागार में जानना चाहिए, क्या उत्पन्न हुआ तो वहां एक कन्या का जन्म हुआ, उस कन्या को ले करके वसुदेव जी, अपने कारागार में, अपने विश्राम गृह में आ पहुंचे। ऐसा हमारे यहां माना गया है, साहित्यकारों ने कहा है कि जब वह कन्या को लाये, तो प्रातः काल होते ही कन्या को राजा ने अपने यहां उसको मृत्यु दण्ड दे दिया, क्योंकि राष्ट्र में जब स्वार्थवाद की प्रथा आती है, स्वार्थवाद बलवती होता है, तो वहां मानव को मृत्यु दण्ड देना प्रारम्भ कर देता है। राजा का, जब विनाश का समय आता है, वह दूसरों के स्वार्थ के वशीभूत

हो करके प्राणों को हनन करने लगता है। तो ऐसा ही राजा कंस का जीवन रहा है।

एक सभा की और सभा में यह निर्णय लिया कि देव ऋषि नारद मुनि ने मुझे एक भविष्यवाणी की थी, और भविष्यवाणी यह थी कि तुम्हारी जो बहन मातृ पुत्री है उसके गर्भ से तुम्हारी मृत्यु का मूल कारण, एक बाल्य का जन्म होगा। वह उसके आंगन में रहा, तो उसने विचारा कि कोई नहीं रहा। उस कन्या को भी मैंने मृत्यु दण्ड दे दिया है सर्वत्र कन्याओं को मैंने मृत्यु दण्ड दिया है और यह मृत्यु दण्ड किसलिए? कि मेरी राष्ट्रीय प्रणाली बनी रहे और जब राष्ट्र बना रहता है और स्वार्थ में मृत्युदण्ड देना प्रारम्भ करता है तो जानो कि उस राष्ट्र के विनाश का समय आ गया है। उस राष्ट्र की प्रणाली समाप्त होने वाली है।

इस आभा में नियुक्त करता हुआ, मैं सबको नष्ट करूंगा। कंस से वह बाल्य नष्ट नहीं हो सका, वह बाल्य पनपता रहा, बाल्य प्रबल होता रहा। नन्द के राष्ट्र में भी उन्होंने नाना प्रकार के दण्ड देने का प्रयास किया, परन्तु उस पर भी वह अपने में अनूठा ही बना रहा, बनने का परिणाम यह उन्होंने राजा कंस को भी मृत्यु को प्राप्त कराया था और भी जो उनके यहां सेनापति इत्यादि थे। उनसे संग्राम की प्रवृत्तियां बनी रही, वह भी युवा हो गये थे, और युवा होने से उन्होंने जन समूह को अपनाया, जन समूह को अपना करके कंस के लिए मृत्यु दण्ड देने के लिए उन्होंने सब प्रयास किया। उन्होंने एक नाग कृतिका एक समूह था उसको अपना लिया एक जातियता थी प्राणियों की, उसको अपनाया और अपनाने से उसे ग्वाल वालों के रूप में, उन्होंने एक सेना का नृत किया, एक रक्षकों का, उन्होंने एक समूह एकत्रित किया। एकत्रित करके हलधर को सेना नायक नियुक्त करते हुए संग्राम हुआ और संग्राम होने से उन्होंने कंस को नष्ट करके, अपने पितर वसुदेव को निकास करके कारागार में से वह नदी के द्वितीय तट पर आये और जाने के पश्चात उन्होंने द्वारिका के लिए पिता को प्रस्थान कराया। वह तो द्वारिका में चले गये, परन्तु भगवान कृष्णा ने संदीपन ऋषि के यहां अध्ययन करना का प्रारम्भ किया, वह पच्चीस वर्ष का जब ब्रह्मचारी हो गया और कंस को मृत्यु दण्ड दे दिया, अपने पिता को माता को दोनों को द्वारिका में उनका वास हो गया। उसके पश्चात वह संदीपन ऋषि के यहां अध्ययन

के कार्यों में संलग्न हो गये। ऐसा मुझे साहित्य स्मरण करा रहा है, ऐसा साहित्य कह रहा है वह महातम संदीपन के यहां अध्ययन करने लगे। सर्वत्रता में अपनी कृतियों में ब्रह्मचारी बड़े महान होते है, ब्रह्मचारी उसे कहते है जो ब्रह्म में रमण करता है, ब्रह्मचारी उसे कहते है जो मौन प्रवृत्ति को लाने का प्रयास करता है ब्रह्मचारी उसे कहते है जो प्रत्येक श्वास की अभ्योगति को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करता है जैसे एक माला होती है, उस माला के मनके है भिन्न-भिन्न, परन्तु माला जब बनती है जबकि सूत्र में मनके पिरोये जाते है।

तो ब्रह्मचारी वह है, जो प्रत्येक श्वास की गति को ब्रह्मसूत्र में पिरोने का प्रयास करता है और ब्रह्म सूत्र में जब पिरो देता है, तो विचित्र एक माला बन जाती है, जिसको योगी जन अथवा ब्रह्मचारी उसको धारण करते है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के भी दो प्रकार के, स्वरूप माने गये है। और वह ब्रह्मचर्य के दो प्रकार के स्वरूप क्या, एक ब्रह्म है और दूसरी चरी है। चरी नाम प्रकृति का है, ब्रह्म नाम परमपिता परमात्मा का है, जो दोनों को अंगों और उपांगों से जानने वाला है वह ब्रह्मचरिष्यामि कहलाता है।

भगवान कृष्ण ने जब कंस का वध कर दिया, उस राष्ट्र को, अपनी वृत्तियों को अपनी अपने में ही प्रदान करते हुए अध्ययन के लिए चले गये। पितर को द्वारिका में उनका वास कराया, द्वारिका के जन समूह बड़े प्रसन्न हुए, बहुत समय के पश्चात मन्त्री गण भी द्वारिका के राज में लगे हुए थे, परन्तु राष्ट्रनायक आ गया है। राष्ट्र नायक कौन वसुदेव जी, अपने राष्ट्र की प्रणाली को उन्होंने अपनाया, अपनाने के पश्चात ब्रह्मचारी कृष्ण संदीपन ऋषि के यहां अध्ययन कर रहे थे। अध्ययन करके उन्होंने कहा-प्रभु! यह प्राचीदिक क्या है? और प्राचीदिक उन्होंने कहा प्राची कहते है पूर्व दिशा को और दिक कहते है जो उसमें वास करने वाली चेतना है। उसे परमपिता परमात्मा कहा जाता है। उन्होंने कहा वही तो ज्योतिवान है जो उस परमपिता परमात्मा को जान लेता है।

इस प्रकार वह अपने में अध्ययन करते रहे, उनका दूसरा अध्ययन का क्रियाकलाप विज्ञान के माध्यम से हुआ, उन्होंने कहा-प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं अपने में अपने को कैसे ऊंचा बनाऊं, मैं यह चाहता हूँ कि परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है उस ज्ञान

और विज्ञान में मैं प्रवेश करना चाहता हूँ? यह ज्ञान क्या है? और विज्ञान क्या है? उन्होंने कहा दृष्टिपात करने का नाम ज्ञान है, और उसको क्रिया में लाने का नाम विज्ञान कहलाता है। उन्होंने कहा चाहे वह आध्यात्मिकवाद में हो, चाहे वह भौतिकवाद में हो, भगवान कृष्णा अपने में अध्ययन भी करते रहते थे, संदीपन ऋषि के यहां, एक विज्ञानशाला भी थी। जिसके ऊपर ब्रह्माचारी अपने में विज्ञान का अनुसंधान करते थे, और वह विचारते रहते थे कौन-कौन से यंत्रों का निर्माण किया जाए। वेद की एक आख्यिका है, उस वेद की आख्यिका में यह है कि ऐसी वैज्ञानिक रेखा का, वैज्ञानिक निर्माण कर सकता है जिस निर्माण में जितना भी अणु शक्ति का संग्राम होता है, तो अणुशक्ति के प्रभाव को वह रेखा अपने उसके प्रभाव को नष्ट करती रहती है। भगवान कृष्णा ने महर्षि संदीपन मुनि के यहां इस रेखा को जानने का प्रयास किया। अध्ययन चलता रहा, अध्ययन में उनका विषय विज्ञान का और आध्यात्मिकवाद का रहा। परन्तु विज्ञान भी तो अपने में अनूठा है। भगवान कृष्णा बडे विचित्रतव में रत्त रहते थे। वेद का जब अध्ययन करते रहे तो उन्होंने सोलह हजार वेद के मन्त्रों को कण्ठस्थ किया था। वे कण्ठ में वास करने लगे प्रत्येक वेद मन्त्र, अध्ययन उनका बड़ा विचित्र, संदीपन ऋषि अपने में यह कहा करते थे कि मेरे जितने आश्रम में ब्रह्मचारी अध्ययन करते है, सर्वेश्रेष्ठ यदि कोई ब्रह्मचारी है तो वह कृष्णा है। जिसको मैं सुयोग्य उच्चारण कर सकता है। जो मेरे हृदय के अगम्य ज्योतिमयी में जो वास करने वाला है, वह ब्रह्मचारी आचार्य के हृदय में वास करता रहता है। तो भगवान कृष्णा ने इस प्रकार के वेद के वांगमय को जानते हुए सोलह हजार वेद के गोपनीय विषयों से युक्त होते हुए वेद मन्त्रों को उन्होंने कठस्थ किया। क्योंकि उनमें सबसे गोपनीय विषय होता है। गोपनीय विषय का अभिप्राय यह जो उसके गर्भ में विद्यमान है, वह उसके गोपनीय अंग में रमण करने वाला है। तो इस प्रकार के उनके अध्ययन की प्रतिक्रियाएं रही है। प्रातः कालीन जब प्रभु का चिन्तन करते ब्रह्मचारियों को यह कहा जाता था हे ब्रह्मचारियों! प्रातः कालीन तुम ब्रह्म का चिन्तन करो, तो वह ब्रह्म का चिन्तन करने में संलग्न हो जाते, ब्रह्म का चिन्तन करने लगते और कहते, हे प्रभु! तेरा यह कैसा अनूठा जगत है, तू कैसा महान है, तू किस प्रकार हमारा निर्माण करने वाला है। तू कितना

भव्यतव है इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन करना और तेरा जो अनूठा ब्रह्माण्ड है अनूठी जो यह सृष्टि है यह कितनी विचित्र है। कहीं यहां नाना प्रकार के जातीयतव में इस आत्मतत्व को आपने निर्धारित किया है। इस उत्पति के मूल में क्या-क्या विद्यमान है, इसको हम तो जानते नहीं प्रभु! आप तो सर्वज्ञ है, आप सर्वत्रता को जानने वाले है।
इस प्रकार ब्रह्मचारी प्रातःकाल में, जो उपासना करते है तो उनका हृदय, उनका हृदय मग्न हो जाता है। इसी प्रकार अध्ययन की जब द्वितीय प्रतिक्रियाएं परिवर्तित होती है, वह कहते है कि देवयाग, देव पूजा भी करो।
भगवान कृष्णा ने अपने जीवन में यही निर्णय किया, कि वह देवपूजा में रत्त रहते थे देवपूजा के पश्चात आश्रम में कोई अतिथि आ जाए, उसकी सेवा करना यह उनका नियम बन गया। तो प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन देव पूजा और संगतिकरण ब्रह्मचारी एक स्थली पर विद्यमान हो करके अपने में चिन्तन करते रहते थे, प्राचीदिक् अग्नि का विचार करते हुए दक्षिणीदिक् विचार करते हुए उन्होंने सबका चिन्तन और मनन करते हुए परमात्मा का सर्वत्रता में दृष्टिपात करते रहते थे। संदीपन ऋषि जब प्रातःकालीन पंक्ति लगा करके ब्रह्मचारियों से यह प्रश्न करते हे ब्रह्मचारियों! ब्रह्मचारी किसे कहते है, यह विद्या का कौन-सा स्वरूप है तो उस समय कोई ब्रह्मचारी उत्तर न दे सका भगवान कृष्णा ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचारी वह है जो अपने शरीर की रक्षा करता हुआ अपने प्रभु के आंगन में उसके व्यापक रूप को स्वीकार करके उसके अनुकूल अपने जीवन को बरतने वाला वह ब्रह्मचारी कहलाता है। आचार्य के आंगन में यह वाक् उनका समाहित हो गया, विचारा गया कि बड़ा विचित्र यह वाक है। इस प्रकार का उनका विद्यालय में अध्ययन काल इस प्रकार व्यतीत हो रहा था, जब ब्रह्मचारी और आचार्य विद्यालयों में इस प्रकार का अनुसंधान करते है इस प्रकार का विचार देते है, तो उनका विद्यालय पवित्र बन करके रहता है, महान बन करके रहता है। तो संदीपन ऋषि के यहां, एक यंत्र का, निर्माण किया था। पुत्रों! तुम्हें यह प्रतीत होगा, जिस समय महाभारत का संग्राम हुआ था जब अर्जुन मृत्यु की शैय्या पर विद्यमान हो गया, जयद्रथ के नष्ट न होने पर तो उन्होंने अपने दूरभाष से कहा-देवी! तुम उनकी पत्नी का नाम रूक्मिणी उन्होंने अपनी वाणी, आकाशवाणी से कहा

कि उन्होंने एक आख्यिका रूप में अपनी पत्नी की आह्वान किया। तो उन्होंने अपने आसन का, अपने यंत्र का उन्होंने प्रहार किया, वह दिवस की रात्रि बन गई, जब दिवस की रात्रि बन गई, तो उन्होंने कहा हे अर्जुन! दिवस रात्रि हो गई है, वह शैय्या पर विद्यमान हो गया। जब शैय्या पर विद्यमान हो गये तो सर्वत्र उनसे मिलन करने के लिए आये, क्या आओ, आज तो अर्जुन का निधन हो रहा है, वह जा रहे है। तो जयद्रथ इत्यादि सब सर्वत्र आ गये। भगवान कृष्णा ने अपने दूरभाष से अपनी पत्नी को निर्णायक कराया कि द्वितीय यान को अन्तरिक्ष में प्रहार कर दो। उन्होंने जो प्रहार किया तो वह सूर्य उदय हो गया, उन्होंने कहा-अर्जुन! क्या कर रहे हो जयदथ तुम्हारे समीप है उन्होंने जयद्रथ का उस समय वध किया।

तो भगवान कृष्णा ने इन यंत्रों को संदीपन ऋषि के आश्रम में एक विज्ञानशाला थी प्रयोगशाला में, इन यंत्रों को जानने का प्रयास किया। दिवस की रात्रि, रात्रि का दिवस बन जाना यह सूर्य से ऊर्ज्वा ले करके अपने यंत्रों का निर्माण करते रहते है।

तो उनका जीवन कितना भव्य रहा है। आज मैं उनके जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना नहीं केवल, यह कि महापुरूषों का जीवन होता है, उनका जो जन्म होता है वह या तो कारागार में होता है, या उनका जीवन भयंकर वनों में होता है, या वहां होता है जहां अन्न भी प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार महापुरुषों के जन्म की प्रतिभा परम्परागतों से बनी रही है। तो इस प्रकार महापुरुषों का जन्म, परम्परागतों से माना गया है। परम्परागतों से बड़ा विचित्रतव रहा है। भगवान कृष्णा का जीवन, कारागार में हुआ और वह कारागार भी कैसा भयंकर कारागार कहलाया गया तो एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह कहा कि आधुनिक काल की, वर्तमान के काल की यह मान्यता रही है कि भगवान कृष्णा के सोलह हजार देवियां थीं, गोपिया थी। और वह गोपियों में नृत करते रहते थे। मैंने अपने पुत्र से यह वर्णन किया कि गोपियां हमारे यहां वैदिक साहित्य में गोपनीय विषय जहां विद्यमान होता है उसे भी गोपिका कहते है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्रों में गुढ़तम रहस्य गुढ़तम विषय विद्यमान होते है। तो प्रत्येक वेद मन्त्र को गोपनीय विषय की कुञ्जी कही जाती है। इसी प्रकार भगवान कृष्णा के जीवन में सोलह हजार वेद के मन्त्र ऋचाएं

उन्हें कण्ठस्थ थी, उसके ऊपर अनुसंधान होना, विचार विनिमय होना नृत्य नहीं, पुत्र यह जो नृतिका का कृत है। नृत किसे कहते है हमारे यहां नृत भी कई प्रकार के होते है एक नृत हमारे यहां वह होता है जो सामाजिक साधारण रूप से नृत करता है। एक नृत वह है जब गोपनीय विषय, ज्ञान के रूप में प्रगट होता है तो साधना करने वाला, प्राण को जान करके प्राण में नृत करने लगता है। एक नृतिका करने वाला वह जो वैज्ञानिक यंत्रों का निर्माण करता है और निर्माण करके उसके ऊपर वह ओर अनुसंधान करता है तो वह भी गोपियों से एक खिलवाड़ हो रहा है। गोपनीय विषय जो खिलवाड़ नृत करने वाले है, वह बड़े सौभाग्यशाली है संसार में, भगवान कृष्णा बड़े सौभाग्यशाली थे क्योंकि वह सदैव गोपनीय विषयों से संग्राम करते रहते थे और वह उसी में रत्त रहते थे।

संदीपन ऋषि के यहां भगवान कृष्णा ने नाना प्रकार के वेद के मन्त्रों का अध्ययन करके उसको साकार रूप बनाने में तत्पर रहते थे। उनका कारागार में जन्म हुआ, आज मुझे ऐसा प्रतीत और महानन्द जी प्रेरित कर रहे है कि आज का वह दिवस है, जिस दिवस में भगवान कृष्णा जैसे महापुरूषों का माता के गर्भ से उनका माता जननी की गोद में आ करके वह पृथ्वी वसुंधरा के गर्भ में आ गये, वह गर्भ में आ करके नाना सहयोगी बन गये, उन्होंने जो भी अपने जीवन में क्रियाकलाप किया वह बड़ा विचित्र उन्होंने अस्त्रों-शस्त्रों को जानना, ऋषि-मुनियों से अध्ययन करना, यह प्रायः उनका कर्तव्य रहा है। बाल्यकाल का जो जीवन है, वह मानव का देव पूजा में कितने ही कष्ट में हो, परन्तु वह प्रभु का ध्यानावस्थित हो करके, प्रभु को प्राप्त करता रहे और उसकी सृष्टि को निहारता रहे और वैज्ञानिक बन जाओ या अवैज्ञानिकता में चाहे वह आध्यात्मिकवाद में रत्त हो जाए।

56. स्वायम्भु मनु

तो मुनिवरो! मुझे भगवान श्रीकृष्णा का जन्म स्मरण है परन्तु ऐसे महापुरूषों का जन्म हुआ कहाँ? बेटा कंस के कारागार में। मुनिवरो! जितने भी महापुरूष होते हैं उनका कहीं पर्वतों में जन्म हुआ, कहीं कारागार में हुआ, देखो इसी प्रकार की प्रतिमा प्राप्त होती रहती है। कल के वाक्यों में मैंने कहा था कि भगवान श्रीकृष्णा ने महाराजा अर्जुन से कहा था

कि मैं बहुत से जन्मों को जानता है। परन्तु उन्होंने देखो वैश्वा वस्वत् जो भगवान मनु जी हुए हैं वह भगवान मनु द्वितीय काल में हुए परन्तु उससे पूर्व काल में वह शम्भू महाराज के नाम से हुए। सर्वसृष्टि में बेटा! चौदह मनवन्तर होते हैं और चौदह मनु होते हैं। एक एक मनु एक एक अकृत्र समय में आता रहता है, देखो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की सृष्टि होती है। परन्तु उन अवस्थाओं में चौदह मनु होते हैं, ब्रह्म की सहस्र आयु होती है और चौदह मनमन्त्र होते हैं और प्रत्येक मन मन्त्र में एक मनु होता है सृष्टि के प्रारम्भ में जो प्रथम मनु था वह भगवान श्रीकृष्णा के रूपां वृत्ति आस्ति आत्मा ब्रह्मे कृत्रि मानो वही आत्मा थी जिन्होंने सूर्य और अक्षवा को ज्ञान दिया क्योंकि सूर्य और अक्क्षवा जो हुए सर्वप्रथम मनमन्त्र में हुए इसी प्रकार द्वितीय मनु हुए, तृतीय मनु हुए इसी प्रकार अब यह सातवां मनमन्त्र प्रारम्भ हो रहा है। इस समय जो चला रहा है वह सातवां मनमन्त्र चला रहा है। यह भी कुछ काल में समाप्त हो जायेगा और आठवां प्रारम्भ हो जायेगा। इसी प्रकार चौदह मन्त्र होते हैं, प्रत्येक मन्त्र में एक मनु होता है। एक मन मन्त्र की आयु घृति मानी गई है मानो जैसे ब्रह्म का एक अहोरात्र होता है अहोरात्र भी बड़ा विलक्षण माना गया है, ब्रह्म की एक रात्रि एक कल्प के समान होती है, एक कल्प के समान एक दिवस होता है इसी प्रकार ब्रह्म की सौ वर्ष की आयु होने के पश्चात् यह सृष्टि प्रारम्भ समाप्त हो जाता है। मैं इस अध्ययन में अधिक नहीं जाना चाहता। वाक्यों का प्रारम्भ यह चल रहा था कि हम यह विचार विनिमय करते चले जायें कि महापुरूषों का जो जन्म है वह ऊँचे-ऊँचे भवनों में नहीं होता।

मुनिवरो! भगवान श्रीकृष्णा राष्ट्रीय विचारों में कितने पारंगत थे। यह प्रत्येक मानव को उसका ज्ञान है वह कितना राष्ट्रीय विचारों में मानो विज्ञान में कितने पारंगत थे और कर्म काण्ड में उनकी कितनी रुचि थी वेद के परांगत पंडित होने के नाते, वेद का ज्ञान होने के नाते महान वेत्ता कहलाये जाते थे। मुझे स्मरण है कि जब वह गोपनीय विषय को विचार विनिमय करते थे। आज का वह पुनीत सुन्दर दिवस है जब भगवान श्रीकृष्णा का इस पृथ्वी मण्डल पर आगमन हुआ था। मेरे प्यारे महानन्दजी यह कहा करते हैं कि क्या यह मुक्त आत्मा थी अथवा मुक्ति में सूक्ष्मता रह गई थी। तो मैंने इन वाक्यों को पूर्व काल में

टिप्पणियां करते हुए प्रकट करते हुए कहा है कि वास्तव में यह मोक्ष आत्माएं संसार में आती हैं और परोपकार करके यहाँ से चली जाती हैं। वह मानो समाज के लिए और भी कोई कर्म करते वह कर्म उनमें व्याप्त नहीं है क्योंकि उनका विचार उनकी प्रतिभा साधारण कर्म से उपराम होती है इसीलिए मानव को आश्चर्यजनक प्रतीत होता है उनका जीवन। उनके जीवन में यह विशेषता होती है वह साधारण से अलौकिक पुरूष कहलाते हैं क्योंकि वह दृष्टिपात करते हुए भी भोग नहीं भोग्य करते हैं। क्योंकि महापुरूषों की यह एक विशेषता होती है। समाज के हित के जो कार्य होते हैं उनमें वह दूसरों को मिथ्या प्रतीत होता है परन्तु वह मिथ्या उनकी व्याप्त नहीं है क्योंकि उनका जो जीवन है, उनकी जो अलौकिक विचारधारा है वह अपनी कोई विचारधारा नहीं होती वह जो उनका पूर्व संस्कार संकलन होता है और जो संकलन करके आते हैं उसी संकल्प के आधार से उनके जीवन में एक अलौकिकता होती है इसलिए उन्हे भगवान इत्यादियों की उपाधियां प्राप्त हो जाती हैं।

जिस समय उन्होंने इक्ष्वाकु को ज्ञान दिया, महाराजा सूर्य को ज्ञान दिया तो उस समय भगवान कृष्णा की आत्मा ही मनु जी की आत्मा थी। कृष्णा का आत्मा मनु जी के शरीर में प्रविष्ट हो रहा था उस काल में। भगवान मनु ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय विधान को बनाया और विधान बनाते हुए उन्होंने कहा कि''धर्म और मानवता की रक्षा करना राष्ट्र का परम उद्‌ेदश्य है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती है, उस राष्ट्र और पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए।''

इसी आत्मा का सर्वप्रथम जन्म मनु का हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने महाराजा सूर्य और इक्ष्वाकु को ज्ञान दिया। क्योंकि भगवान मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। सूर्य नाम का राजा था। उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। उन्हीं को उन्होंने यह ज्ञान की विचारधाराएँ और राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और ब्रह्म-ज्ञान दे करके वह अपने परम-धाम को प्राप्त हो गए थे।

भगवान कृष्णा में जो गोर्वधन इत्यादियों का शोधन किया जब भगवान कृष्णा ने गोर्वधन की पूजा की गोबर एक धन कहलाया जाता है गोबर एक गो क मल कहलाया जाता है

उसको गोवर्धन कहते हैं धन का अभिप्रायः है इससे हम कृषि में अधिक से अधिक प्रतिस्थापित करने से इससे धन उत्पन्न होता है आज भगवान कृष्णा ने इस उपलद्व्य में आज के दिवस इन्द्र को विजय किया इन्द्र ने कहा वहाँ इन्द्र की पूजा होती थी गोर्वधन पर वह एक स्थान भी है जो वृन्दावन के रास्ते भगवान कृष्णा के जहाँ जन्म भूमि परन्तु उसी के द्वार पर वह एक स्थान गोर्वधन जहाँ इन्द्र की पूजा होती है इन्द्र की पूजा होती है इन्द्र की पूजा हुआ करती थी भगवान कृष्णा से पूर्व इन्द्र की पूजा जब इन्होंने सब गऊओं को एकत्रित किया और गऊंओं की पूजा की गई गोर्वधन पर वृन्दावन के जहाँ सर्वत्र राष्ट्रों से वहाँ एक सुन्दर गऊओं की पूजा होने लगी गऊंओं के प्रति भगवान कृष्णा का यक कार्य रहता था कि भगवान कृष्णा प्रत्येक गऊ के दुग्ध को पान करते थे एक-एक रूप में उनके दुग्ध को पान करते उन्हें निर्मित किया करते थे कयोंकि भगवान कृष्णा अपने जीवन में एक बहुत ऊँचे वैज्ञानिक और अपने जीवन में अनुसन्धान का कार्य था यह सबसे पूर्व उन्होंने यही किया अपने राष्ट्र में अपने समाज में प्रजा में हमें सबसे पूर्व विचारना है कि हमारे राष्ट्र के लिए हमारे जीवन के लिए स्वास्थय के लिए सबसे ऊँची वस्तु क्या है सबसे ऊँची वस्तु यदि कोई संसार में गृहस्थी के आश्रम में विचारने के लिए तो अपने स्वास्थय के लिए है जिस गृहस्थ में जिस राष्ट्र में स्वास्थय ऊँचा होता है स्वस्थ व्यक्ति होते हैं वहाँ प्रशंसा होती है भगवान कृष्णा ने सबसे पूर्व यह कार्य किया तो गोवर्धन पर एक उन्होंने एक समाज एकत्रित किया उस समाज में गऊंओं को एकत्रित किया भगवान कृष्णा का यह आदेश था कि पूजन करो किसका पूजन करो गोर्वधन का गऊंओं की पूजा करो गऊंओं की पूजा करने से हमारा समाज हमारी मानवता इससे ऊंची बनेगी इसीलिए भगवान कृष्णा ने सबसे पूर्व गऊंओं का पूजन किया

उससे गऊंओं का दुग्ध पीने से हमारे जीवन में एक बुद्धिमानता आती है श्वास ऊँचा होता है और गऊंओं के दुग्ध को पान करने पर हमारे शरीर में जो नाना प्रकार के जो रूग्ण हो जाते हैं वह भी नष्ट हो जाते हैं नष्ट हो जाने के पश्चात अहा, देखो, उससे हमारा स्वास्थय ऊँचा बनता चला जाता है और वह कलिष्ट भोजन करने से मानव का स्वास्थय अंग भंग हो जाता है अंग भंग हो जाने के पश्चात सबसे पूर्व यह विशेषता है गऊ के

दुग्ध पान करने में क्या मानव के जीवन में सदाचार की भावना आती है प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या के द्वारा दुराचार की भावना न आ करके सदाचार की भावना आती है कयोंकि गऊ के दुग्ध में वह परमाणु होते हैं वह स्नेह होता है जो स्नेह गऊओं को होता है गऊ में कितना भी क्रोध हो परन्तु उस क्रोध में जब भी उन्हें एकत्रित होने का समय मिलेगा तभी वह एकत्रित हो जाते हैं इसी प्रकार उनमें कितना स्नेह होता है ऐसे ही मानव मात्र में भी इसी प्रकार का स्नेह हो जाता है मेरे आदि आचार्यों जनों मेरे पवित्र भोले ऋषि मण्डल उस भगवान कृष्णा की चर्चा प्रगट कर रहे हैं जिन्होंने बेटा! गऊओं की पूजा की भगवान कृष्णा से पूर्व भी देखो, गऊओं की पूजा होती चली आई गऊओं की पूजा आज से नही परन्तु परम्परा से होती चली आई है सर्वत्र संसार में गऊओं की पूजा की जाती है उसके दुग्ध को पान किया जाता है घृत को पान किया जाता है उसी में यज्ञ किया जाता है देवता जन प्रसन्न होते हैं वह समय-समय पर मानव को स्वास्थय देते रहते हैं ।

पूज्य महानन्द जी :- गुरुदवे हमने ऐसा सुना है इन्द्र ने वृष्टि की जब इन्द्र की पूजा नही होती थी और भगवान कृष्णा ने गोवर्धन के पर्वत को ऊँचा अपने से ऊँचा उठाया था और वृन्दावन के जितने प्राणी थे सब उसकी छाया में चले गये।

पूज्यपाद गुरुदेव :- यह इसका अभिप्रायः नही है कि इन्द्र ने वृष्टि की तो पर्वत को उन्होंने ऊँचा कर लिया इसका अभिप्रायः तो यह भी हो सकता है क्या ऊँचा स्थान था वृष्टि अधिक हुई और गोर्वधन के ऊपर बसने चले गये सर्वत्र यह भी हो सकता है परन्तु यह नही कि प्रकृति के नियम के विरूद्ध माना जाता है परन्तु भगवान कृष्णा परमात्मा के उस परमानन्द के बहुत निकट थे बहुत निकट होने के पश्चात जो इसके निकट होता है वह प्रकृति के विपरीत कोई कार्य नही करता भगवान ने जो नियम बनाये हैं उनके विपरीत कोई कार्य नही करता विपरीत कौन जाता है जो परमात्मा से दूरी हो जाता है और जो परमात्मा के जितना भी निकट होता है उतना ही वह प्रकृति के नियम को अंग भंग नही करता परमात्मा के नियम को नष्ट नही करता वह उसके अनूकुल कार्य करता चला जाता

है स्वतः होता रहता है

गोवर्धन से भगवान कृष्णा ने गऊओं की पूजा कराई वहाँ इन्द्र की पूजा भी होती थी परन्तु इन्द्र की पूजा को उसने शान्त कराया क्या इन्द्र की पूजा इन्द्र के राष्ट्र में होनी चाहिए परन्तु इन्द्र ने उन्हें कष्ट देने का प्रयत्न भी दिया बकासुर इत्यादियों ने उनको कष्ट देने का कार्य किया भगवान कृष्णा ने अपने प्रकरण से उनकी एकता से उनकी मानव मात्र की सहायता से छाया से उसकी सेना को नष्ट किया नष्ट करने के पश्चात परन्तु यह हुआ आज हमे इन्द्र हम किसे कहते है। इन्द्र केवल उसको नहीं कहते जो सब राजाओं का राजा परन्तु देखो, हम परमात्मा को इन्द्र कहा करते हैं यहाँ इन्द्र यदि एक राजा को लिया जाए तो वृष्टि क्या करायेगा परन्तु वह अणु और परमाणुओं से वृष्टि करा भी सकता है यह भी हो सकता है बहुत से यन्त्र ऐसे होते हैं जो प्रकृति से निकासे जाते हैं अनुसन्धान करने के पश्चात कि वह अन्तरिक्ष में उनका प्रहार करने के पश्चात जलों का उत्थान हो जाता है उस वृष्टि भी हो सकती है परन्तु वह यन्त्र प्रकृति की नाना धातुओं से निकासा जाता है मेरे आदि ऋषि-मुनियों इसको प्रत्येक जानता होगा कि भगवान कृष्णा कि उस क्रिया को जाना करते थे इन्द्र भी उस प्रक्रिया को जानते थे परन्तु इन्द्र ने यह कराया यह हो सकता है परन्तु इन्द्र ने ऐसा किया नही था यह मानव की एक कल्पना है एक गोर्वधन को ऊँचा ले जाने के लिए मानव की एक कल्पना है यह एक श्रद्धांजलि और एक श्रद्धा का एक पाठ है परन्तु यह इससे अधिक श्रद्धा से उसका वास्तविक वाक् का अंग भंग हो जाता है गोर्वधन की पूजा करने से भगवान कृष्णा ने अपने जीवन का उत्थान किया अपनी प्रजा को ऊँचा बनाया है

भगवान कृष्णा के यहाँ एक कार्य और भी होता था नन्द की जितनी भी सेना थी गऊओं का सब घृत सब राजा कंस के द्वारा चला जाता था राजा कंस के द्वारा जाता था भगवान कृष्णा जो भी देवी उन्हें प्राप्त होती जो भी माताएं घृत ले जाती उन्हें दृष्टिपात होती उनसे छीन लेते और कहा करते कि यह कंस दुराचारी है तुम घृत को स्वयं पान करो भगवान कृष्णा ने यह कितने ऊँचे-ऊँचे कार्य किये उन्होंने कहा कि कंस इतना दुराचारी है कि वह दूसरों के अधिकार को लेना चाहता है संसार में उस व्यक्ति को नष्ट कर दो जो दूसरों के

अधिकार को छीनना चाहता है दूसरे के अधिकार को छीनना यह मानवता नही कहलाई जाती है